ISBN-978-81-928330-0-2

लोहा व इस्पात उत्पादन

लेखकः
डॉ गोकुलानंद मुखर्जी

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

लोहा व इस्पात उत्पादन

लेखक
डॉ. गोकुलानन्द मुखर्जी
पूर्व उपाध्यक्ष
भारतीय इस्पात प्राधिकरण
(स्टील अथॉरिटी ऑफ इन्डिया)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

2013

© भारत सरकार, 2013
© Goverment of India, 2013

ISBN - 978-81-9283330-0-2
प्रथम संस्करण : 2013

मूल्य : भारत में : ₹ 187.00
विदेशों में : £ 1.83 या $ 3.00

प्रकाशक :–
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, राकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066.
वेबसाइट : www.cstt.nic.in

बिक्री का पता :–
(1) **बिक्री अनुभाग**
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, राकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066.
दूरभाष : 011–26105211 – विस्तार (Ext.) 246
(2) **प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार**
सिविल लाइन्स, पुराने सचिवालय के पास
दिल्ली–110054.

पुनरीक्षण एवं संपादन

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा

संपादक
श्री अशोक एन. सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

पुनरीक्षण
श्री सतीश चन्द्र सक्सेना
(पूर्व) उपनिदेशक, आयोग

प्रकाशन
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार
सहायक निदेशक

कलाकार
श्री आलोक वाही

श्री कर्मचन्द
प्रवर श्रेणी लिपिक

अनुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठ संख्या
* प्रस्तावना	05
* दो शब्द लेखक के	07-08
* संपादकीय	09
* आयोग के पूर्व अध्यक्ष	10
* वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांत	11-16
1. भारत वर्ष में लोहा एवं इस्पात उत्पादन का इतिहास	17-42
2. लोहा उत्पादन	43-85
3. इस्पात उत्पादन	86-115
4. इस्पात का रूपांतरण	116-144

5. परिशिष्ट 145

1. (i) भारतीय एवं विदेशी इस्पात संयत्रों से तकनीकी आर्थिक उत्पादन

(ii) भारतीय एवं विदेशी इस्पात–निर्माण की तुलना

2. भारत एवं विदेशों में धमन भट्ठियों की स्थिति 146

3. भारत एवं विदेशों में आधारी ऑक्सीजन भट्ठी (BOF) की स्थिति 147

4. सहायक परिशोधन तकनीक, लैडल भट्ठी (LF) एवं निर्वात आर्क अभिकल्पना (VAD) 148

5. सतत् संचकन प्रणाली की भारत एवं विदेशों में स्थिति 149

6. भारत एवं विदेशों में बेलन मिलों की स्थिति 150

6. पारिभाषिक शब्द–सूची 151-158

प्रस्तावना

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली की स्थापना की थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक शब्द–संग्रहों, परिभाषा कोशों, पत्रिकाओं, पाठमालाओं, तथा विश्वविद्यालयस्तरीय हिंदी पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन किया है।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि इसकी विषय–सामग्री अद्यतन तथा उपयोगी हो एवं भाषा सरल, बोधगम्य हो और उसमें वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का यथा संभव अधिकतम समावेश हो।

प्रस्तुत पाठमाला 'लोहा व इस्पात उत्पादन' भारतीय इस्पात प्राधिकरण के पूर्व उपाध्यक्ष डॉ. गोकुलानंद मुखर्जी ने लिखी है और इसका अनुवाद श्री वीरेंद्र ग्रोवर एवं श्री जसवीर चावला ने किया है। पुस्तक का पुनरीक्षण आयोग के (पूर्व) उपनिदेशक श्री सतीश चंद्र सक्सेना ने किया है। लेखक, अनुवादक, और पुनरीक्षक के प्रयास से यह कार्य संपन्न हुआ है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

डॉ. मुखर्जी लंबे समय तक इस्पात उद्योग से जुड़े रहे हैं और उन्हें इस्पात निर्माण की अद्यतन तकनीकों की यथेष्ट जानकारी है जिनका उन्होंने इस पुस्तक में सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। आशा है धातुकर्मिकी और विशेषकर इस्पात–उत्पादन में रुचि रखने वाले छात्रों, शोधकर्त्ताओं, और अध्यापकों के लिए यह पुस्तक अति उपयोगी सिद्ध होगी।

पाठमाला योजना के प्रभारी श्री अशोक सेलवटकर, वैज्ञानिक अधिकारी निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं जो अनेक कठिनाइयों के बावजूद तथा अन्य व्यस्त कार्यों के बाद भी इस कार्य को अंतिम रूप देने में सफल रहे।

प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

दो शब्द लेखक के

अपने कार्यकाल में मैंने ऐसे बहुत–से उद्योगकर्मी देखे जो जीवन में अधिक लिख–पढ़ नहीं सके। किंतु इनमें से बहुत से लोग बहुत अच्छे मिस्त्री, कारीगर, आपरेटर खाबित हुए। बहुत–से लोगों ने उद्योग जगत की प्रौद्योगिकी का आधारभूत ज्ञान न होते हुए भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे काम करते हुए व्यक्ति को देखकर लगता था कि वह काम तो बहुत लगन से कर रहा है, परंतु एक अनजान पथिक की तरह। इस अनजान पथिक को यदि मार्ग का कुछ ज्ञान हो तो वह शायद यात्रा का अधिक आनंद ले सकेगा। इसी प्रकार फैक्टरी में काम करने वाले श्रमिक को अगर काम से जुड़े वैज्ञानिक पहलुओं की कुछ जानकारी हो तो निश्चय ही वह काम करने में अधिक आनंद ले सकेगा और संभव है, काम की गुणवत्ता में भी सुधार आ जाए। ऐसा करके ही तो विदेशों में प्रौद्योगिकी में बहुत से सुधार किए गए क्योंकि वहाँ वर्कर या आपरेटर काम का जानकार और प्रौद्योगिकी के विकास में भागीदार भी था। समय बदला है इन सभी देशों में सामान्यतया सब कार्य अंग्रेजी में किया जाता है। इसे एक आपरेटर को अगर पढ़ना पड़ जाए तो थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानने पर भी वह तकनीकी साहित्य पढ़ने में एक ऊब या थकावट–सी अनुभव करता है। इस चिंता ने मुझे बांग्ला भाषा में यह पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया।

इस पुस्तक की रूप–रेखा की प्रेरणा मैंने बहुत–से विदेशी प्रकाशनों से ली है, जैसे कि– मेटल टू दी सर्विस ऑफ मैन, वास फस्तास्ताल, स्टील मैन्युअल, मेकिंग शेपिंग ट्रीटिंग ऑफ स्टील, ए एस एम हैन्डबुक तथा इस प्रकार की और बहुत–सी पुस्तकें, संदर्भ–ग्रंथ, मार्ग–दर्शिकाएँ आदि। इन सभी प्रकाशनों से जरूरत के मुताबिक मैंने चित्र, ग्राफ आदि अपनी इस पुस्तक में उदधृत किए हैं। इस संबंध में बहुत–सी धारणाओं को भी मैंने ग्रहण किया किंतु इन सभी को अंकित करके उनका आभार व्यक्त करना संभव नहीं है। मैं उन सब ग्रंथों और उनके प्रकाशकों का आभारी हूँ।

इस पुस्तक के लेखन में मुझे श्रद्धेय श्री हितेन भाया से बड़ी प्रेरणा, उत्साह और मार्गदर्शन मिला है। आप योजना आयोग के सदस्य, कलकत्ता स्थित इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट के निदेशक तथा हिन्दुस्तान स्टील के अध्यक्ष रह चुके हैं। आज भी उद्योग जगत में आपका नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इसी संदर्भ में एक और बन्धुकर एवं शुभाकांक्षी प्रोफेसर रमा रंजन मुखोपाध्याय का भी मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगा।

मेरे सहयोगी श्री वीरेन्द्र ग्रोवर एवं श्री जसवीर चावला ने जो इस समय नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सेकन्डरी स्टील टेक्नालाजी' में कार्यरत हैं। इस पुस्तक की रचना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मैं उनके प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

पुस्तक के संपादक श्री अशोक सेलवटकर ने बड़ी मेहनत से स्वयं अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए व पुस्तक की प्रगति अर्थात् प्रकाशन कब होगा की मेरे द्वारा की जानेवाली विचारणा जो लगातार दो वर्ष चलती रही, जिससे उन्होंने सहजता से लेते हुए पुस्तक को अंत में सफलतापूर्वक प्रकाशित किया, उनका भी आभार प्रकट करता हूँ।

मैं अंत में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शेफाली एवं परिवारजनों – पुत्र 'पार्थ, पुत्री 'विजया, पुत्रवधु 'ममता, तथा जामाता 'अजय, का भी कई प्रकार के सहयोग के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

डॉ. गोकुलानन्द मुखर्जी
पूर्व उपाध्यक्ष
भारतीय इस्पात प्राधिकरण

संपादकीय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष प्रो. के. एल. वर्मा व पूर्व अध्यक्ष प्रो. के. विजय कुमार तथा अन्य संबद्ध अधिकारियों का हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने डॉ. मुखर्जी की पुस्तक "लोहा व इस्पात उत्पादन" को पाठमाला योजना के अंतर्गत प्रस्तुत रूप में प्रकाशित करने के लिए मार्गदर्शन किया है। आयोग ने वर्ष, 2004 में मुखर्जी द्वारा लिखित पुस्तक "इस्पात परिचय" को भी प्रकाशित किया है।

भारत में इस्पात उद्योग एक प्रमुख और अग्रणी उद्योग है। विश्व इस्पात उद्योग में भी भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। पिछले दो हजार वर्षों में इस उद्योग के प्रगति के साथ साथ इसके आधुनिकीकरण में भी अत्याधिक परिवर्तन हुआ है। नई नई तकनीकों से इस उद्योग को और सुकर बनाने में भारत सरकार ने विभिन्न योजनाएं क्रियान्वित की है।

प्रस्तुत पुस्तक में विषय सामग्री, "इस्पात परिचय" की अपेक्षा अधिक प्रगत है। डॉ. मुखर्जी को भारतीय इस्पात प्राधिकरण में दीर्घ सेवा की अवधि में इस्पात उद्योग तथा इस्पात निर्माण की अद्यतन तकनीकों का प्रचुर अनुभव रहा है। अतः इस पुस्तक में अद्यतन जानकारी व आंकड़े प्रस्तुत करने का यथा संभव प्रयास किया गया है। साथ ही कई स्थलों पर विदेशों में प्रयुक्त इस्पात प्रौद्योगिकी का भी उल्लेख किया गया है। मुझे आशा है कि श्री गोकुलानन्द मुखर्जी का यह प्रयास पाठकों को न केवल अच्छा लगेगा अपितु उनमें और अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा जागृत होगी।

अशोक एन. सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

आयोग के पूर्व अध्यक्ष

1.	डॉ दौलत सिंह कोठारी	1961–1965
2.	डॉ. निहाल करण सेठी	1965–1966
3.	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद	1966–1967
4.	डॉ. एस. बाल सुब्रह्मण्यम	1967–1968
5.	डॉ. बाबूराम सक्सेना	1968–1970
6.	श्री कृष्ण दयाल भार्गव	1970–1970
7.	श्री गंटि जोगि सोमयाजी	1970–1971
8.	डॉ. पी. गोपाल शर्मा	1971–1975
9.	प्रो. हरवंश लाल शर्मा	1975–1980
10.	प्रो. मलिक मोहम्मद	1983–1987
11.	प्रो. सूरजभान सिंह	1988–1994
12.	प्रो. प्रेमस्वरूप सकलानी	1994–1998
13.	डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव	1998–2001
14.	डॉ. हरीश कुमार	2001–2003
15.	डॉ. पुष्पलता तनेजा	2003–2006
16.	प्रो. के. विजय कुमार	2006–2011

वर्तमान अध्यक्ष

17.	प्रो. के. एल. वर्मा	2012–

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली–निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेज़ी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :–

   क) तत्वों और यौगिकों के नाम जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाई–ऑक्साइड आदि;

   ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

   ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं जैसे – मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टेन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), ऐम्पियर (मि. ऐम्पियर), फ़ारेनहाइट तापक्रम (मि. फारेनहाइट) आदि;

   घ) वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान, आदि की द्विपदी नामावली;

   ङ) स्थिरांक, π, g जैसे आदि;

   च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि;

   छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक चिह्न और सूत्र, जैसे – साइन, कोसाइन, टैन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँग परंतु संक्षिप्त रूप नागरी और मानक रूपों में भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं। सेंटीमीटर का प्रतीक जैसे cm. हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु नागरी संक्षिप्त रूप से.मी. हो सकता है। यह सिद्धांत बाल–साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm. ही प्रयुक्त करने चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे : क, ख, ग या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे साइन A, कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार–विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :–

   क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

   ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे, telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि, इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स आदि, इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण** – अंग्रेजी शब्दों का

लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएँ जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग** – हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द** – पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि के रूप में सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं यथा सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास** – कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द–रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंत** – नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोग** – पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए, परंतु lens, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

PRINCIPLES FOR EVOLUTION OF TERMINOLOGY APPROVED BY THE COMMISSION

1. 'International terms' should be adopted in their current English forms, as far as possible, and transliterated in Hindi and other Indian languages according to their genius. The following should be taken as examples of international terms :-

   a) Names of elements and compounds, e.g. hydrogen, carbon dioxide, etc.;

   b) Units of weights, measures and physical quantities, e.g. dyne, calorie, ampere, etc.;

   c) Terms based on proper names e.g., marxism (Kar[1] Marx), braille (Braille), boycott (Capt. Boycott), guillotine (Dr. Guillotin), ampere (Mr. Ampere), fahrenheit (Mr. Fahrenheit), etc.;

   d) Binomial nomenclature in such sciences as Botany, Zoology, Geology, etc.;

   e) Constants, e.g. π, g, etc.;

   f) Words like Radio, Retrol, Radar, Electron, Proton, Neutron, etc., which have gained practically world-wide usage; and

   g) Numerals, symbols, signs and formulae used in mathematics and other science e.g., sin, cos, tan, log etc. (Letters used in mathematical operation should be in Roman or Greek alphabets)

2. The symbols will remain in international form written in Roman script, but abbreviations may be written in Nagari and standardised form specially for common weights and measures, e.g., the symbol 'cm' for centimetre will be used as such in Hindi, but the abbreviation in Nagari may be सें.मी.. This will apply to books for children and other popular works only, but in standard works of science and technology, the international symbols only, like cm., should be used.

3. Letters of Indian scripts may be used in geometrical figures e.g., क, ख, ग or अ, ब, स but only letters of Roman and Greek alphabets should be used in trigono-metrical relations, e.g., sin A, Cos B, etc.

4. Conceptual terms should generally be translated.

5. In the selection of Hindi equivalents simplicity, precision of meaning and easy intelligibility should be borne in mind. Obscurantism and purism may be avoided.

6. The aim should be to achieve maximum possible identity in all Indian languages by selecting terms : a) common to as many of the regional languages as possible, and b) based on Sanskrit roots.

7. Indigenous terms, which have come into vogue in our languages for certain technical words of common use, such as तार for telegraph/ telegram, महाद्वीप for continent, डाक for post etc., should be retained.

8. Such loan words from English. Portuguese, French, etc., as have gained wide currency in Indian languages should be retained, e.g., ticket, signal, pension, police, bureau, restaurant, deluxe etc.

9. **Transliteration of International terms into Devanagari Script -** The transliteration of English terms should not be made so complex as to necessitate the introduction of new signs and symbols in the present Devanagari characters. The Devanagari rendering of English

terms should aim at maximum approximation to the standard English pronunciation with such modifications as prevalent araongst the educated circle in India.

10. **Gender** - The International terms adopted in Hindi should be used in the masculine gender, unless there are compelling reasons to the contrary.

11. **Hybrid formation** - Hybrid forms in technical terminologies e.g., गारंटित for 'guaranteed', क्लासिकी for 'classical', कोडकार for 'condifier' etc. are normal and natural linguistic phenomena, and such forms may be adopted in practice keeping in view the requirements for technical terminology, viz., simplicity, utility and precision.

12. **Sandhi and Samasa in technical terms** - Complex forms of Sandhi may be avoided, and in case of compound words, hyphen may be placed in between the two terms, because this would enable the users to have an easier and quicker grasp of the word structure of the new terms. As regards आदिवृद्धि in Sanskrit-based words, it would be desirable to use आदिवृद्धि in prevalent Sanskrit tatsama words e.g., व्यावहारिक, लाक्षणिक etc., but may be avoided in newly coined words.

13. **Halanta** - Newly adopted terms should be correctly rendered with the use of 'hal' wherever necessary.

14. **Use of Pancham Varna** - The use of अनुस्वार may be preferred to in place of पंचम वर्ण, but in words like 'lens', 'patent', etc. the transliteration should be लेन्स, पेटेन्ट and not लेंस, पेटेंट or पेटेण्ट.

★★★

अध्याय 1

भारत में लोहे और इस्पात उत्पादन का इतिहास

साधारणतः शुद्ध लोहा प्राकृतिक अवस्था में नही मिलता। कभी कभी उल्कापात से छोटे–बड़े कई किस्मों के लोहे एवं इस्पात के टुकड़े अथवा खण्ड पाए गए हैं। किन्तु उनकी मात्रा बहुत कम होती है। हाँ, ग्रीनलैंड के डिसको द्वीप में 25 टन वजन का लोह खण्ड, उल्का से प्राप्त हुआ था। यह भी सुना गया था कि द्वीप वासियों ने इस धातु से चाकू इत्यादि वस्तुएं बनाई थीं। किंतु काल चक्र में ये सब हथियार जंग खा गए और फिर मिट्टी में मिल गए। इसी वजह से आदिम मानव युग में लोह व्यवहार के प्रमाण नहीं मिलते। पुरातात्विक मतानुसार 2000 से 3000 ईसापूर्व से पहले लोहा बनाने का कोई सबूत नहीं मिलता। अनेक पुरातत्ववेत्ता मानते हैं कि पूरे संसार में खासकर यूरोप और अमेरिका में लोह युग से पहले ताम्र युग धटित हुआ। जबकि चीन और भारत में लोहयुग की सूचना ताम्रयुग से पहले की मिलती है।

बहुत बार कहा जाता है कि मध्य प्रागैतिहासिक युग (6000–7000 ईसापूर्व) में मिश्र देश में लोहा बरता जाता था। बाद में पता चला वास्तव में वह ताँबा, निकल और लोहा मिलाकर बनी हुई कोई धातु थी। आज भी मिश्र में इस धातु का प्रचलन है। मिश्र में खासकर 3000 ईसापूर्व यहाँ की कब्रों में लोहे के पट्ट इस्तेमाल किए गए थे। (Journal of Iron & Steel Inst. 1925 Vol. 12)।

धातुविद् इस विषय में पुरातत्वविदों से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार भारत, चीन तथा मेसोपोटामिया में लोहा और इस्पात दोनों तैयार किए जाते थे। दो विख्यात धातु

2—302 Min. of HRD/2013

विद् Peras एवं Day लिखते हैं (JIS 1887) कि ताम्रयुग के पहले लोह युग की शुरुआत हो चुकी थी खासकर पूर्वी गोलार्द्ध में। इसी पत्रिका में Dr. J. Mtteath (1839) लिखते हैं – "The antiquity of the Indian process is no less astonishing than it crenuity. We can hardly doubt that the tool with which the Egyptians covered their obelisks and temple of prophyry were made from Indian steel. There is no evidence to show that any of the natives of the antiquity, besides the Hindus were acquainted with the art of making steel"

यह भी कहा गया है कि हमारे बहुपरिचित राजा पुरु ने ग्रीक वीर सिकंदर को इस्पात खंड उपहार में दिया था। इस प्रकार भारत में इस्पात और उसका प्रयोग प्रशंसा प्राप्त कर चुका था।

विश्वप्रसिद्ध धातुविद् Sir P. Hadfield (1912) भी लिखते हैं कि इस बात में तनिक संदेह नहीं कि भारत में लोह तथा इस्पात हजारों साल पुराने हैं। मिश्र में लगा सारा लोहा भारत से मँगाया जाता था। यहाँ तक कि भारत के दक्षता प्राप्त कारीगर भी वहाँ सहायता के लिए जाते थे। Hadfield लिखते है – "The Hindus had been familiar with the Manufacturing of steel furniture" यहाँ तक कि पत्थर खोदने के लिए ज्यादा कार्बन वाला इस्पात (Cementite Steel) एवं हथियार बनाने वाला इस्पात भी भारत से मँगाए जाते थे।

हाल में देश के विभिन्न स्थानों पर खुदाई से बहुत चीजें मिली हैं, जिनकी उम्र रेडियो कार्बन डेटिंग द्वारा आँकी गई है। इन सब वस्तुओं को उनकी आयु के अुनसार चित्र 'अ' में दर्शाया गया है, जिससे पता चलता है कि भारत में लोहा और इस्पात बनाने की तकनीक, युगों युगों से सारे देश में प्रचलित थी। पेंटेड ग्रेवेयर अर्थात् धूसर रंग की लोह–वस्तुएं लगभग 1200 से 1600 ईसापूर्व की है। इस तरह की 135 चीजें पाई गई हैं। इनमें 7 भाग धातुमल और 14 भाग लोहा असंपूर्ण अवस्था में पाया गया। इससे साफ जाहिर है कि भारतीयों को लोह अयस्क से लोहा प्राप्त करने की विधि अच्छी तरह ज्ञात थी। नाना प्रकार के हथियार जैसे कि सरिया, हुक, कील, चाकू आदि की परीक्षा करने पर पता चला कि ये प्राकृतिक उल्कापात वाले लोहे से नहीं बने हैं। लोहे के साथ मिले हुए हैं SiO_2 (रेत) चूना ऐलुमिनियम, मैंगनीज इत्यादि। धातुमल जैसे कि कच्चे लोहे अथवा पिटवा लोहे में पाए जाते हैं और कई एक टुकड़ों में तो सतह पर कार्बाइड भी मिले।

नार्थन ब्लैकपॉलिश्ड वेयर अथवा उत्तरांचल की काली पालिश की गई सामग्री प्रायः 600 से 500 ईसापूर्व की है। इस में खेती बाड़ी तथा घर बनाने के औजार हैं। और कुछ धातुमल के नमूने भी पाए गए हैं।

इस काल में भारत की ख्याति लोह–इस्पात के विभिन्न लंबे छड़, पिटाई द्वारा उत्पादन करने में हुई जैसे – (क) विश्वविख्यात दिल्ली का लोह स्तंभ (चौथी शताब्दी)। (ख) कोणार्क मंदिर के लोह कड़े (नौवी शताब्दी)। (ग) धार में पाया गया लोह स्तंभ (15वीं शताब्दी)। इसके इलावा अंजार की 75 मीटर लंबी तोप जिसे तैयार किया गया था लोह धड के ऊपर तीन बार इस्पात के पतरे पीट कर। बीजापुर की दामडा केशव तोप का भार 50 टन है। अनेक स्थानों पर इस तरह के विभिन्न प्रमाण बिखरे हैं जैसे कि बाँकुड़ा में दल मादल तोप, मुर्शिदाबाद में जाहाकुमार तोप, आसाम में बीजापुर तोप वगैरह। इनके कुछ के बारे संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है –

दिल्ली का लोह स्तंभ

इसके बारे दुनिया भर में अनुसंधान हुए हैं। Dr. J.D. Fleet (Corpus Inscriptionum Indicarum III Early Gupt king - Calcutta 1888 P. 139) लिखते हैं कि इस तीसरी/चौथी शताब्दी के स्तंभ पर जो लिखा है उसका संक्षेप में अर्थ यह हुआ कि यह स्तंभ, चंद्रगुप्त अथवा विक्रमादित्य का विजय स्तंभ है। सिंधु नदी के पंचमुख के बाद बलूचिस्तान फतह करने का यह स्मारक चिह्न है। भारत में और भी लोह स्तंभ हैं परंतु इतना बड़ा और सुंदर दूसरा कोई नहीं। Mr. Ball (Geographical Manual-1881) ने इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। विख्यात धातुविद् Sir Hadfield ने परीक्षणकर बताया (1925) कि यह स्तंभ विशुद्ध लोहे से बना है (कार्बन 0.080 प्रतिशत, सिलीकन 0.046 प्रतिशत, फास्फोरस 0.114 प्रतिशत, नाइट्रोजन 0.032 प्रतिशत, मैंगनीज शून्य, ताँबा 0.034 प्रतिशत, लोहा 99.72 प्रतिशत) इसमें उन्हें धातुमल अथवा दूसरे अशुद्ध द्रव्य नहीं मिले – फैराइट के बड़े–बड़े रेणु अवश्य मिले। आधुनिक लोह निर्माण की विधि से इस तरह का लोहा आज नहीं बन सकता।

इस स्तंभ का वजन करीब सात टन है। खंड–खंड से बने लोहे के लाल पिंडों को एक पर एक हथौड़ी से पीटकर जोड़ा गया है। 23 फीट 6 इंच (जमीन के नीचे 3' 1' इंच सहित) ऊँचे इस स्तंभ का ऊपरी खुदाई किया चूड़ा तकरीबन 3 फीट 5 इंच का हैं आश्चर्य तो यह है कि जंग न लगने वाले इस लोह स्तंभ का निचला सिरा 99.37 शुद्ध जस्ते की चादर से मढ़ा गया था, ताकि जंग से इसे बचाया जा सके।

धारस्थित लोह स्तंभ

मध्यप्रदेश के मालवा अंचल में इंदौर से 13 मील दूर,, धार शहर में स्थित यह स्तंभ राजा भोज के राज्यकाल में बना था। आयतन में यह दिल्ली स्तंभ से भी बड़ा था। मुगल आक्रमण में तीन–चार टुकड़ों में टूटा था। पूरे स्तंभ की ऊँचाई दिल्ली स्तंभ की दुगुनी करीब 553 फीट 8 इंच, राजा भोज का विजय स्मारक रहा होगा। धार शहर मालवराज भोज की राजधानी थी।

माउंट आबू का लोह स्तंभ

15वीं शताब्दी का यह स्तंभ, राजस्थान के अंकलेश्वर मंदिर में अवस्थित है। 12 फीट 9 इंच ऊँचे स्तंभ के चूड़ा पर शिव का त्रिशूल है।

उड़ीसा का सूर्य मंदिर

उस प्राचीन युग के इस्तेमाल किए गए ठोके लोहे के कड़ों और सांकलों की वजह से यह मंदिर आज भी खड़ा है। इसके बीच दो बड़े–बड़े कड़ों का आयतन देखकर व्यक्ति अवाक हो जाता है एक धड़ आदमी। 6" × 6" पैंतीस फीट लंबा है और दूसरा 11" × 11" का 25.5" लंबा है। ऐसा लगता है छोटे–छोटे चौकोर धड़ एक साथ गरम कर हथौड़ों से पीट पीट कर इन्हें बनाया गया था। पुराने लोहे के नमूनों का विश्लेषण का आज के लोहे से तुलना करें तो यह सारणी मिलती है –

सारणी–1 : प्राचीन काल के लोह नमूनों का रासायनिक विश्लेषण

तत्व	दिल्ली स्तंभ 375 ईस्वी	धार स्तंभ 12वीं शताब्दी	कोणार्क वर्ग 1250	डमस्कास तलवार	आधुनिक इस्पात
कार्बन	0.080	0.02	0.110	1.97	0.80
सिलिकन	0.046		0.10	0.07	0.17
सल्फर	0.006		0.024	0.07	0.025
फास्फोरस	0.114	0.28	0.015	0.02	0.040
मैंगनीज				0.07	0.360
ताँबा	0.034				

प्राचीन भारत में लोह एवं इस्पात उत्पादन की विधि

ऊपर वर्णित तथ्यों से यह साफ है कि 1200 ई. पूर्व शताब्दी से पहले ही लोहा तथा इस्पात बनाने का तरीका भारत में आम प्रचलित था। शुरु में आदिवासी तथा अन्य उपजातियाँ अपनी जरूरत के मुताबिक थोड़ी मात्रा में लोहा बनाती थी। आगरिया नामक एक उपजाति देश के विभिन्न स्थानों एवं जंगलों में मिलती थी, खासकर उत्तरप्रदेश, बिहार–बंगाल–उड़ीसा के अंचल में जिनके इष्ट देवता का नाम लोहमुख, कालभैरव आदि था। इन्हें लोहा बनाने की विधि ज्ञात थी। लेकिन उनका यह ज्ञान अपनी पीढ़ियों तक ही सीमित रह गया। यह घूमन्तु जाति जंगलों में घूमा करती, लोहा बनाकर बाजारों में बेचती फिर आगे बढ़ जाती। एक स्थान पर टिकती नहीं थी। इसी वजह से लोहा बनाने की विधि सारे भारत वर्ष में फैल गई। यहाँ तक कि विदेशों में भी इस जाति का पता लगा है। आगारिया संप्रदाय की इस असुर उपजाति की खोज, लोहा बनाने की प्राचीन पद्धति हासिल करने के अनेक प्रयास हुए हैं। जापान में भी इस जाति के संकेत मिले हैं। उड़ीसा की जीरागोरा तथा चिगला बिचाय, बिहार की कामार जोड़ा एवं लोहा पाडा (मुंडा उपजाति) में आज भी इनके अवशेष मिलते हैं। हाल में स्टील अथारिटी द्वारा एक समाचार प्रकाशित हुआ है कि नेतारहाट के जंगलों में नाग–असुर उपजाति के 90 वर्षीय वृद्ध तथा इसके कई साथियों ने पुरानी पद्धति द्वारा लोहा बनाकर दिखाया है। इस अंचल में छोटे–छोटे लोहे बनाने के चूल्हे आज भी पाए जाते हैं। ज्ञात हुआ है कि बालाघाट अंचल (उड़ीसा) के आगारिया लोग पुरानी विधि से 5.6 किलो लोहा बनाकर दिखा चुके हैं, पर सुना जाता है कि पहले जमाने में 250 किलो तक लोहा इस तरह तैयार कर लेते थे। पूरे भारत में लोहा बनाने वाले चूल्हे जिस प्रक्रिया का इस्तेमाल करते थे इसकी विस्तृत जानकारी Mr. John Percy ने अपनी 1864 में छपी किताब Metallurgy of Iron & Steel के "डारेक्ट एक्सट्रेक्शन ऑफ आयरन" नामक अध्याय में पृष्ठ 254 से 270 में दी है। उनके मतानुसार लोहा बनाने की जो विधियाँ उन दिनों इस्तेमाल होती थी, उन को मोटे तौर पर उत्तर और दक्षिण भारत को दो भागों में बाँटा जा सकता है। हाँ हर जगह ईंधन के रूप में लकड़ी कोयला (चार कोल) तथा बकरे के चमड़े और बाँस के पाईप से बनी हवा देने वाली धौकनी का प्रयोग होता था। दक्षिण भारत की चूल्ही 2′ से 4′ ऊँची होती थी जिससे हर बार 6 पाउंड लोहा बनता था। बड़ी चूल्ही से 30 पाउण्ड लोहा मिलता था।

गोलाकार चूल्ही की ऊपर वाली परिधि 6′ से 10′ और नीचे वाली परिधि 10″ से 15″ होती थी ये खास किस्म की मिट्टी से बनी होती थी। इसमें Al_2O_3 की मात्रा अधिक होती थी जो खोज कर बरती जाती थी ताकि चूल्ही मजबूत रहे। चूल्ही में नीचे की तरफ दो छेद होते थे– एक हवा देने के लिए, दूसरा धातुमल बाहर करने के लिए। पहले लकड़ी का कोयला डालकर चूल्ही आधी भर दी जाती थी, उसके ऊपर सूखी लकड़ियाँ रखकर आग जला दी जाती थी तथा नीचे से हवा दी जाती थी। आग लग जाने पर ऊपर से बारी–बारी लोह–अयस्क और लकड़ी कोयला की खेप डाली जाती थी। जब लोहा बनना शुरू होता तब लोहे की छड़ लेकर धातुमल बाहर कर दिया जाता है। 4–6 घंटों में एक बाल्टी माल तैयार हो जाता था। लालगर्म लोहा निकालते ही उसे हथौड़ी से पीटा जाता था ताकि लोहे से धातुमल अलग हो जाए।

मध्य प्रदेश में एक अन्य प्रकार की खासी बड़ी भट्टी इस्तेमाल होती थी। नर्मदा उपत्यका में इस प्रकार की भट्टी प्रचलित थी। आकार में यह गोलाकार चिमनी जैसी थी जिसका व्यास 15″–18″ तथा ऊँचाई 30″ होती थी। लाल गर्म होते ही लोहे को सँड़सी से खींचकर बाहर निकाला जाता था। हर बार भट्ठी तोड़नी पड़ती थी। एक भट्टी में तीन–चार बार माल झोंक कर लोहा तैयार किया जाता था। यह भट्टी ओर विधि बहुत हद तक स्पेन के काटालान अंचल की समसामयिक प्रणाली से मिलती जुलती है।

भारत के विभिन्न अंचलों में नाना प्रकार की चूल्हियों का प्रचलन था। सारणी–2 में कुछ तथ्य दिए गए हैं।

(एंसियेंट आयरन–मेकिंग इन इंडिया – प्रो. बी. प्रकाश) इन सब चूल्हियों से तैयार स्पंज लोहा, विशुद्ध लोहा तथा धातुमल का रासायनिक विश्लेषण सारणी–3 में दिया गया है।

प्राचीनकाल में भारत में तैयार लोहे की तीन श्रेणियाँ थीं–

1. कांता लोहा अर्थात् खूब मृदु लोहा अथवा चुंबक लोहा
2. तीक्ष्ण लोहा अथवा इस्पात जिससे हथियार बनाए जाते थे।
3. मुंडा लोहा अर्थात् भंगुर लोहा अथवा ढलाई लोहा

सारणी--2 : पुरानी लोह चूल्हियों का तकनीकी विवरण

क्रम संख्या	चूल्ही का प्रयोग स्थल	आकार	माप		क्षमता		विशेष बात
			ज्यादा से ज्यादा (सेंटी मीटर)	मुँह (से.मी.)	छोप	किलो	
1.	मध्यप्रदेश	गोल	बाहरी व्यास 107 अंदर व्यास 43	बाहर से 56 अंदर से 12	2	16	जमीन के ऊपर बनाई जाती थी
2.	मध्यप्रदेश	आयताकार	122 × 76	--	122	2	214 मिट्टी की बनी ईंटों से 122X305X91 घन सेंटीमीटर का गड्ढा बना 380 किलो लोह अयस्क गला सकते थे, 3 घंटों में
3.	नागपुर	वर्गाकार	56 X 56	51 × 25	92–122	2	5 ---
4.	राजदोहा	गोलाकार	बाहर 107 अंदर 46	बाहर 56 अंदर 13	132	2	18 एक बार गलाने में 6 घंटे लगते थे, 80 किलो चारकोल जला
5.	नालंदा घाटी	आयताकार	36 × 87	51 × 25	90–122	2	5 एक बोझ में 25 किलो लोह अयस्क और 25 किलो चारकोल
6.	सालेम	गोल	61	31	90–153	2	– मुँह पर एक चिमनी लगा देते थे
7.	मौंडला	गोल	बाहर 78	बाहर 16	76	–	– ---
8.	चिंगलाबीहा (कोरापुत)	गोल	अंदर 30	अंदर 15	95	2	– चूल्ही का निचला हिस्सा धरती के अंदर
9.	जीरागोरा (कोरापुत)	गोल	अंदर 25	अंदर 7.5	57.5	2	– जमीन की सतह से नीचे
10.	कमरजोड़ा (जोड़ा, बिहार)	गोल	अंदर 30	अंदर 7.5	67.5	2	– जमीन की सतह से ऊपर
11.	बस्तर	गोल	अंदर 24	अंदर 20	80	2	– वर्गाकार 200 x 200 सेंटीमीटर का गड्ढा बना चूल्ही जमीन की सतह से नीचे बनाई जाती थी

इन तीनों प्रकारों के लोहे का इस्तेमाल उनके गुणगत भेदों पर निर्भर था। मिन्टर्नर (जर्नल आफ आयरन एंडस्टील खंड (iv) पृष्ठ 162–172, 1893) लिखते हैं कि 1857 ई. में केवल मध्यप्रदेश अंचल में ही 80 भट्टियां थीं। स्थानीय लोग एक रुपया मन लोहा और दो रुपया मन इस्पात खरीदते–बेचते थे। यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि 1830 ई. में व्यास नदी पर पुल बनायागया था। मिण्टर्नर बताते हैं कि मध्यप्रदेश का लोहा तब के स्वीडन के लोहे से कहीं अच्छा और शुद्ध था। (सारणी–4)

ऊपर दिए गए लोहे को तीन–चार बार गर्म कर हथौड़ों से पीटने पर कुछ धातुमल अलग हो जाने की वजह से निम्नलिखित विश्लेषण मिलता है –

Fe-99.94%, Si-0.01%, S-नगण्य, P-0.013%, Mn-नहीं, ग्रैफाइट कार्बन–नहीं, मिश्रित कार्बन–0.03 प्रतिशत, इस प्रकार शुद्ध किया लोहा इतना नर्म एवं मजबूत होता है कि इसे इच्छानुसार आकार दिया जा सकता है।

वुट्ज़ इस्पात

इस्पात बनाने में कार्बन की जो विशिष्ट भूमिका है उसे भारतीयों ने पहली शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही समझ लिया था। कार्बन मिलाकर लोहे में सामर्थ्य और दूसरी विशेषताओं के अनुरूप गुणता प्राप्त की जा सकती है। यह वे भली–भांति जानते थे। इस लक्ष्य को सामने रख भारत में इस्पात बनाने की उन्नत विधि विकसित हुई थी। उसके फलस्वरूप भारत का इस्पात, एशिया एवं यूरोप के नाना जगहों पर व्यवहार में लाया जाता था। यह वुट्ज इस्पात के नाम से परिचित था। यह नाम विदेशियों द्वारा दिया गया था। कर्नाटक तथा आंध्रप्रदेश में उन दिनों इस्पात को उक्कू के नाम से जाना जाता था। ऐतिहासिक प्रमाणों तथा अन्य रचनाओं द्वारा वुट्ज इस्पात के संबंध में बहुत कुछ पता चलता है। प्राचीन काल में सारा विश्व, दक्षिण भारत के इस्पात को सर्वोत्तम मानता था एवं यह यूरोप, चीन, अरब इत्यादि देशों में निर्यात किया जाता था। भारत में बने 1–2 प्रतिशत कार्बन इस्पात द्वारा विश्वविख्यात डैमस्कस की तलवारें बनाई गई थी। अरब देश में तलवार के अलावा दूसरे अस्त्र–शस्त्र भी भारतीय इस्पात से बनाये जाते थे। यह वुट्ज इस्पात विदेशों में बीसवीं शताब्दी तक चलता रहा। 1960 में परीक्षणों द्वारा पाया गया कि इस इस्पात में 2 प्रतिशत कार्बन होते हुए भी इसे सहज ही कोई भी आकार दिया जा सकता है।

सारणी–3 : विष्णुपुर में बनाए स्पंज एवं विशुद्ध लोहे तथा धातुमल का रासायनिक विश्लेषण

रासायनिक तत्व	स्पंज लोहा	विशुद्ध लोहा	धातुमल
कुल आयरन Fe%	54.99	96.25	50.64
आयरन ठोस Fe (Metal)%	22.53	94.21	3.7–52.87
कार्बन C%		0.16	0.21
मैंगनीज Mn%		0.057–0.043	
फासफोरस P%		0.02	
सल्फर S%		0.007–0.2	0.033
आयरन ऑक्साइड FeO%	4.90	1.55–.013	59.12
उच्च आयरन ऑक्साईड Fe_2O_3%		1.18	4.53
सिलीका SiO_2%		0.30	11.82
ऐलुमिना Al_2O_3%		0.034	9.71
कैल्सियम ऑक्साइड CaO%			7.84
मैग्नीशियम ऑक्साइड MgO%		नगण्य	1.92
फास्फोरस ऑक्साइड P_2O_5%		नगण्य	1.99
क्षार NaO%			0.765

सारणी–4 : मध्यप्रदेश के लोह का रासायनिक विश्लेषण

लोहा		आयरन	
आयरन Fe	98.18 प्रतिशत	सिलका SiO_2	10.33 प्रतिशत
सल्फर S	0.005 प्रतिशत	ऐलुमिना Al_2O_3	1.83 प्रतिशत
फास्फोरस P	0.028 प्रतिशत	फेरिक एवं फेरस ऑक्साइड $Fe2O_3$ FeO	63.27 प्रतिशत
मैंगनीज Mn	0.013 प्रतिशत	मैंगनीज ऑक्साइड MnO	0.23 प्रतिशत
धातुमल (Slag)	1.11 प्रतिशत	कैल्सियम ऑस्साइड CaO	2.49 प्रतिशत
कार्बन C ग्रैफाइट	0.66 प्रतिशत		

वैज्ञानिक इस बात पर आश्चर्यचकित हैं कि इतना अधिक कार्बन होने पर भी तब के भारतीय कारीगर किस तरह इस इस्पात को सहज ही विभिन्न आकार दे पातें हैं। बहुत वर्षों तक यूरोपवासी इस प्रकार के इस्पात को आकार देने में सफल नहीं हो पाए। दुनिया के सामने तब यह आश्चर्य का विषय था। इस प्रकार के इस्पात में पर्याप्त परिवर्तन लाने का चमत्कार, ताप नियंत्रण प्रक्रम था जिसे भारतीय कारीगर जानते थे। 810 से 650 डिग्री सेल्सियस ताप के बीच 2 प्रतिशत कार्बन वाला इस्पात अति नरम हो जाता है। यूरोप के कारीगर और ऊँचे ताप पर गर्माकर वह आकार देने में सफल नहीं हो पाए।

वुट्ज इस्पात बनाने की विधि

प्राचीनकाल में इस्पात बनाने के अनेक विधियाँ प्रयोग में आती थी जो स्थानीय सुविधाओं पर आधारित थी। सब से ज्यादा प्रचलित विधि का यहां उल्लेख किया जा रहा है। इसमे कम कार्बन वाले लोहे के साथ ज्यादा कार्बन वाले लोहे के टुकड़े मिलाकर एक क्रूसीबल (कूठाली) में कुछ खास पेड़ों के पत्ते और धान की भूसी मिलाकर इस तरह बंद कर दिया जाता था कि बाहर से हवा न घुस पाए। इस तरह के मिश्रण को एक खास सीमित ताप पर गर्म किया जाता था ताकि दोनों तरह के लोहे आपस में घुल–मिल जायें। यह ताप 1400 डिग्री सेंटीग्रेड के आसपास होता था। इसी हालत में पत्तों तथा भूसी से कुछ कार्बन धुलकर लोहे में चला जाता था। अनेक विशेषज्ञों का मत है कि इस तरह तैयार किए गए लोहे में कोई 3 प्रतिशत कार्बन होता था जो बाद में इस्पात तैयार करने के लिए थोड़ा कम किया जाता था। साधारणतः 1400–1500 डिग्री सेल्सियस पर लोहे में कार्बन की अधिकतम मात्रा 1.6 प्रतिशत रखी जा सकती है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि ठोस कार्बन ही लोहे में विसरण द्वारा घुल जाता था। वुट्ज इस्पात का विश्लेषण, सारणी–5 में दिया गया है।

ईसा के पहले ही भारत में क्रूसीबल विधि से इस्पात तैयार हो जाता था, जैसा दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों यथा महीसुर, सालेम, दक्षिण आर्कट (तमिलनाडु), गुलबर्गा (कर्नाटक) इत्यादि। तक्षशिलाा में बेहतर (कार्बन 1.23 प्रतिशत से ज्यादा) इस्पात बरता जाता था। ईसापूर्व इस इलाके से बड़ी मात्रा में लोहा एवं इस्पात निर्यात किया जाता था, इसके सबूत हैं। मोची विधि से बनाए गए अधिक कार्बन युक्त लोहे

सारणी–5 : वुट्ज इस्पात का रासायनिक विश्लेषण (1200 ई. के बाद)

उत्पादन स्थल	कार्बन प्रतिशत	दूसरे तत्व प्रतिशत
सालेम	1.642	S=0.161, Mn 0.037
मध्यप्रदेश	1.652	S=0.17, Mn 0.0036
श्रीलंका	1.970	S Mn 0.07, P 0.02
महीसुर (1) जबलपुर	0.963 1.214	S=0.02, Mn 0.097, Si 0.13 S=0.02, Mn 0.03, P 0.14, Si Se 0.13
महीसुर (2)	0.450	S=0.01, P 0.27, Si 0.14

मिनरल्स एंड मेटल्स फ्रॉम इंडिया – ए. के. विश्वास

और इस्पात की पतली चादर भी निर्यात की जाती थी। अनेक विदेशी, यूरोपीय भी यह विधि आकर देख गए थे। खासकर महीसुर, मालाबार एवं गोलकुंडा अंचल इनके आकर्षण स्थल थे। 1600 ई. तक हजारों टन वुट्ज इस्पात जहाजों पर लाकर फारस के रास्ते विदेश जाता था। इस सब तथ्यों से यही उजागर होता है कि भारत में यूरोप से बहुत पहले ही यह उद्योग अति समृद्ध था। और तो और 19 वीं शताब्दी तक भी वुट्ज स्पात से निर्मित तलवार, चाकू इत्यादि बनाने के शिल्प केंद्र लाहौर, अमृतसर, आगरा, जयपुर, ग्वालियर, तांजोर, महीसुर, गोलकुंडा इत्यादि थे। इस इस्पात को खास ढंग से ठंडाकर आवश्यकतानुसार गुणों वाले हथियार तथा औजार बना लिए जाते थे। भारतीय इस्पात शिल्प तब इन विशेषताओं से भरपूर था।

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीय इस्पात शिल्प और इस्पात व्यवसाय ठप्प पड़ गया। उन्होंने यहाँ अपने ढंग से लोहे एवं इस्पात उद्योग खड़ा करने की कोशिश की पर असफल रहे। तब आयात द्वारा ही काम चलाया जाने लगा। भारत की अपनी विधि अतीत के गर्भ में लुप्त हो गई। बाद में भारत ने विदेशी तकनीक पर आधारित लोहा एवं इस्पात के कारखाने स्थापित किए। आजादी के थोड़ा ही पहले और बाद में इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, रूस आदि देशों की तकनीक अपनाई गई।

आधुनिक लोह एवं इस्पात उत्पादन

आधुनिक लोह एवं इस्पात के बारे में बात करते ही ध्यान आता है कैटालेन फोर्ज एवं स्टूक भट्टी की तरफ। 1914 तक स्टूक भट्टी द्वारा जर्मनी में लोहे का उत्पादन होता था। इसके बाद आविष्कार हुआ परिवर्तक अथवा परावर्तनी भट्टी (रिवरबेरट्री फरनेस) का। 17वीं शताब्दी में कोक बनाने का काम हुआ एवं 18वीं शताब्दी में बन गई, ब्लास्ट फर्नेस या धमन भट्टी। इन दो शताब्दियों में लोहा एवं इस्पात बनाने की तकनीकों में सुधार हुआ। मोची विधि की क्रूसीबल भट्टी का अधिक प्रयोग होने लगा। इस दौरान भारत की अपनी प्रचलित तकनीक, अंग्रेजों के कारण लुप्त हो गई।

इसके बाद खोज हुई बेसीमर परिवर्तक की जिससे आधुनिक लोह एवं इस्पात उत्पादन का सूत्रपात हुआ। इसी के साथ आविष्कृत हुई ओपन हार्थ विधि तथा 1900 ई. में बिजली-भट्टी का प्रयोग होने लगा। 1950 में ऑक्सीजन के प्रयोग द्वारा क्रांतिकारी तकनीक का आरंभ हुआ।

यूरोप से जो लोग 1700 ई. में भारत आए थे उन्होंने भारत में वुट्ज इस्पात एवं क्रूसीबल विधि द्वारा उच्च गुणता के इस्पात उत्पादन संबंधी सारी जानकारी लेकर उसका व्यापक रूप से व्यापार किया था। लेकिन अंग्रेजों के भारत पर कब्जा जमाते ही उन्होंने यहाँ लोह एवं इस्पात का उत्पादन बंद करवा दिया और जरूरत के मुताबिक बिना आयात शुल्क के इंग्लैंड से मँगवाना शुरू कर दिया। इसलिए भारत की अपनी तकनीक का कोई विकास नहीं हो पाया। धीरे–धीरे सब कुछ भुला दिया गया क्योंकि कुछ भी लिपिबद्ध नहीं था। यूरोपीय लोगों ने अपनी मर्जी मुताबिक यहाँ कारखाने खोलने शुरू किए। 18वीं शताब्दी के अंत तथा 19वीं शताब्दी के शुरू में ऐसा हुआ।

वर्ष 1830 में मद्रास के पोर्ट नोवो में ईस्ट इंडिया कंपनी के मिस्टर मार्शलहीय नामक एक सिविल सर्वेट ने ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम पर एक लोहे और इस्पात का कारखाना शुरू किया। इसमें प्रति सप्ताह करीब 40 टन लोहा, लकड़ी–कोयला जलाकर बनाया जाता था। उन्होंने ईस्ट इंडिया आयरन कंपनी के नाम से मालाबार तट पर पालमपल्ली, तिरुवन्मलै एवं बीजापुर में और तीन कारखाने स्थापित किए। कुछ ही वर्षों में पता चला कि पर्याप्त मात्रा में लकड़ी का कोयला मिलना कठिन एवं खर्चीला है। इससे लोहा और इस्पात बनाने का खर्चा पूरा नहीं होता। 1874 ई. में सारे कारखाने बंद कर दिए गए। इसी तरह का एक कारखाना 1855 ई. में कलकत्ता की मैके एंड

कंपनी द्वारा बीरभूम जिले में लकड़ी–कोयले पर निर्भर कर वीरभूम आयरन वर्क्स के नाम से शुरू किया गया था। वह भी 1880 ई. में बंद कर दिया गया। इसी कंपनी द्वारा 1862 में कुमाऊँ आयरन वर्क्स के नाम से एक कारखाना उत्तरप्रदेश में खोला गया था। कई कारणों से 1864 में उसे भी बंद करना पड़ा। अंत में 1874 ई. में बर्न एंड कंपनी ने कोयले से कोक बनाकर आधुनिक विधि द्वारा रानीगंज अंचल के कुलटी गाँव में लोहा बनाना शुरू किया। इसी वजह से कुलटी को आधुनिक लोहा इस्पात का आदि केंद्र (पीठ स्थान) माना जा सकता है। 1882 ई. में बर्न कंपनी ने कारखाने का कार्यभार बंगाल आयरन एंड स्टील कंपनी (BISCO) को सौंप दिया। तब इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता कोक चालित धमन भट्टी के माध्यम से 4 लाख टन थी। इस प्रकार भारत में आधुनिक विधि का श्रीगणेश हुआ था और आज भी वहाँ लोहा इसी तरह बनाया जाता है।

लोहे के बाद आधुनिक इस्पात बनाने का काम भारतीय रेलवे और रक्षा मंत्रालय ने शुरु किया। ईस्ट इंडियन रेलवे ने 1898 में जमशेदपुर में पहली ओपन हार्थ फर्नेस लगाई जिसमें 2000 टन पिंड लोहा तथा 400 टन इस्पात की साँचा ढलाई होती थी। तीन ओपन हार्थ भट्टियाँ लगाई गई थी। सेंट्रल इंडियन रेलवे ने 1906 ई. में आजमी में 2 टन क्षमता का बेसिमर परिवर्तक (कन्वर्टर) लगाया। वहाँ अनेक किस्मों की इस्पात की ढलाई का काम होता था। फिर 1902 में प्रतिरक्षा विभाग ने इच्छापुर में मेटल और इस्पात कारखाने में 33 टन की एक विद्युत् आर्क भट्टी की स्थापना की। यहाँ सालाना 12000 टन इस्पात तैयार किया जाता था।

आधुनिक समेकित इस्पात कारखाना जहाँ कोक बनाने से लेकर इस्पात के बिक्री योग्य तैयार उत्पाद बनते हैं, सबसे पहले 1907 ई. में टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी ने लगाया। साकची गाँव में इसका काम शुरु हुआ था जिसका नाम अब है जमशेदपुर जो टाटा स्टील के संस्थापक महापुरुष जमशेदजी नशेरवानजी टाटा के नाम पर रखा गया है। काम शुरु हुआ 1908 में और पहली धमन भट्टी चालू हुई 1911 में और 1912 में पहला इस्पात पिंडरोलिंग मिल प्रांरभ हुआ। योजनानुसार सालाना एक लाख साठ हजार टन कच्चा लोहा तथा एक लाख टन इस्पात पिंड का बनना शुरु हुआ और इस कारखाने की क्षमता 1939 में आठ लाख बिक्री योग्य तैयार इस्पात उत्पादों तक पहुँच गई।

ठीक इसी समय बिस्को में भी इस्पात उत्पादन की कोशिशें चल रही थी पर उनके लोह अयस्क में ज्यादा फास्फोरस होने की वजह से सफलता नहीं मिल रही थी। बाद में सिंहभूमि जिले में अच्छी लोह खदानें मिलने पर 1918 ई. में आसनसोल के करीब हीरापुर गाँव में ढलवाँ लोहा तैयार करने के लिए इंडियन आयरन एंड स्टील कंपनी की स्थापना हुई और अच्छा ढलवा लोहा बनाने में सफलता मिलने पर 1936 ई. में बिस्को तथा ईसको को मिला कर स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल की स्थापना की गई। जिसमें 1937 से 1939 तक इस्पात बनाने की कोशिशें चलती रही। हीरापुर के नजदीक नापारि गाँव में इसकी भट्टियाँ लगी। बाद में 1952 में समस्त सुविधाओं को समेकित कर बर्नपुर वर्क्स ऑफ ईसकों का नाम रखा गया और सर बीरेन मुखर्जी ने प्रथम अध्यक्ष के रूप में इसका दायित्व ग्रहण किया। तब इसकी उत्पादन क्षमता तीन लाख पचास हजार टन इस्पात की थी।

इधर बंगाल और बिहार में जब लोह एवं इस्पात शिल्प अपने पैरों पर खड़ा हो रहा था तब दक्षिण भारत में एक मनीषी एम. विश्वेसरैय्या का आविर्भाव हुआ, जिन्हें बाद में सर की उपाधि भी मिली। उनकी प्रयासों से 1921 साल में भद्रावती आयरन एंड स्टील वर्क्स की स्थापना हुई। 1923 में लकड़ी–कोयले से चलने वाली धमन भट्टी चालू की गई, जिसमें 25000 टन ढलवाँ लोहा प्रति वर्ष तैयार किया जाने लगा। फिर ढलवाँ लोहे से सालाना 10000 टन पाईप बनाने की क्षमता वाला कारखाना वहीं लगाया गया। 1956 ई. में 25 टन क्षमता वाली ओपन हार्थ भट्टियां लगाई गई, जिससे साल में 30000 टन इस्पात तैयार किया जाने लगा। कालांतर में इस कारखाने का नाम मैसूर आयन एंड स्टील वर्क्स रखा गया। बाद में इसे संस्थापक के नाम से विश्वेसरैय्या आयरन एंड स्टील लिमिटेड के नाम से जाना गया जो अभी भी कायम है।

इन कुछ बड़े कारखानों के अलावा कई छोटे इस्पात कारखाने विद्युत् भट्टी लगाकर चालू किए गए। मसलन, हुकमंचद इलेक्ट्रिक स्टील कंपनी आजकल जिसका नाम भारतीय इलेक्ट्रिक स्टील कंपनी है, जिसे कलकत्ते के समीप 1923 ई. में शुरू किया गया था। इसी दौरान बिहार के कुमार धोबी, लाहौर तथा बंबई में कई विद्युत् आर्क भट्टियां लगाई गई।

इनके साथ–साथ इन छोटे–बड़े कारखानों के आस–पास कई पुनर्वेलन (दि रोलिंग) के कारखाने भी बनने लगे थे जो इन बड़े कारखानों से बिलेट ही नहीं अपितु

व्यक्त इस्पात–खंड खरीद लेते थे तथा उन्हें फिर से लाकर बेलन मिलों से सही माल तैयार कर सस्ते में बेचने लगे। इसी तरह 1926 में कानपुर में सिंह इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड के नाम से रोलिंग मिल लगी। बिलेट पर निर्भर करने वाली रिरोलिंग इकाईयाँ कई जगहों पर विकसित हुई मसलन कलकत्ते में गेस्टकीन विलियम्स तथा नेशनल आयरन एंड स्टील कंपनी बंबई में मुकुंद आयरन एंड स्टील कंपनी इत्यादि। 1943 तक इन वेलन करने वाली इंकाइयों से सालाना लगभग एक लाख चालीस हजार टन इस्पात का सरिया तथा छड़ इत्यादि बनने लगे।

1940 के आस–पास कुल मिलाकर भारत की इस्पात उत्पादन क्षमता दस लाख टन और पुनर्वेलन की क्षमता एक लाख टन से अधिक थी। आजादी मिलने के बाद देश को उद्योग–धंधों में आत्मनिर्भर बनाने के लिए नवगठित सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के तहत काम करना शुरु किया। इनका मुख्य उद्देश्य देश को आर्थिक रूप से उन्नतिशील बनाना था। अप्रैल 1956 का ऐतिहासिक औद्योगिक प्रस्ताव आज भी स्मरणीय है। इस नीति के अनुसार समग्र उद्योग–धंधों को तीन वर्गों में रखा गया।

पहले भाग (शिडयूल **A**) में लोहे एवं इस्पात, भारी मशीन बनाने के कारखाने तथा अन्य बड़े कारखानों की स्थापना का काम रखा गया। दूसरे भाग (शिड्यूल **B**) में अनेक प्रकार की मशीनें, औजार–हथियार एवं इनके लिए उपयुक्त इस्पात बनाने का उद्योग, कोयला उत्पादन एवं कोयले पर आधारित उद्योग रखे गये। पहले भाग का सम्पूर्ण भार सरकार पर था। दूसरे भाग का पूरा भार सरकार को क्रमशः अपने पर लेने की योजना थी जिसमें निजी पूँजी का समावेश भी था। बाकी बचे सारे उद्योग–धंधों और वाणिज्य केंद्रों को गैर सरकारी नियंत्रण में रखने की योजना थी। आजादी के बाद स्पष्टतः लोह इस्पात एवं इससे जुड़े उद्योग को प्रधानता मिली।

देश की आर्थिक एवं औद्योगिक उन्नति के लिए योजना आयोग का गठन हुआ। देश की अग्रगति के लिए सटीक एवं सार्थक पथ–निर्देश नियत करना ही इस आयोग का प्रधान कार्य था। पहली पंचवर्षीय योजना में सिंचाई, विद्युत, कृषि, यातायात एवं सामाजिक उन्नति के साथ इस्पात उत्पादन की उन्नति का भी ध्यान रखा गया था। क्योंकि तभी यह महसूस किया गया था कि देश की समग्र उन्नति के लिए आधार संरचना की स्थापना (इंफ्रास्ट्रकचर) के बिना इस्पात उत्पादन संभव नहीं है।

तदनुसार 1953 ई. में केंद्र सरकार तथा जर्मनी के क्रूप्प–डेमार्ग कंपनी के बीच राउर केला (उड़ीसा) में पहले चरण में 5 लाख टन (दूसरे चरण में 10 लाख टन)

इस्पात उत्पादन–क्षमता का कारखाना बनाने को समझौता हुआ। इसी तरह सोवियत रूस से मध्यप्रदेश के भिलाई में 10 लाख टन का कारखाना बनाने का समझौता हुआ। लगभग इसी समय इंग्लैंड से समझौता हुआ जिसके तहत पश्चिम बंगाल के दुर्गापुर नामक स्थान पर 10 लाख टन कारखाने और का 1956 तक तीस लाख टन इस्पात बनाने के नए कारखानों का सूत्रपात हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना (अप्रैल 1956 से मार्च 1961) में सरकारी क्षेत्र में इन तीन बड़े कारखानों की गूँज देश–विदेश में फैल गई। सरकारी क्षेत्र में साथ–साथ टिस्को तथा ईस्को की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर 10 लाख टन कर दी गई। इन परियोजनाओं द्वारा कुल उत्पादन क्षमता का लक्ष्य 60 लाख टन रखा गया था। इसी दौरान मैसूर का कारखाना विद्युत् भट्टी द्वारा लोहा गलाने के लिए शुरु हुआ क्योंकि बिहार–बंगाल के कोयले अंचल से कोक मंगाना अथवा लकड़ी कोयला का विद्युत् उपयोग दोनों ही दुष्कर तथा मँहगे थे।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–1966) में राउरकेला, भिलाई एवं दुर्गापुर संयंत्रों की उत्पादन क्षमता क्रमशः 180,25 तथा 16 लाख टन नियत की गई। खास किस्म के इस्पात बनाने की व्यवस्था भी की गई। मसलन टिन चादर तथा गैल्वनाइज्ड चादर राउरकेला, तार–रेल भिलाई में और कम चौड़ी चादरें (स्केल्प) दुर्गापुर कारखानों में बनने लगे। तृतीय एवं चतुर्थ योजना के दौरान उत्पादन बढ़ोत्तरी का काम 1967–68 में खत्म हुआ। इसी दौरान भिलाई कारखाने में द्वितीय चरण का विकास कार्य शुरु कर दिया गया, फलस्वरूप तृतीय योजना काल में भिलाई की उत्पादन क्षमता 40 लाख टन तक पहुँच गई।

इसी समय सरकारी क्षेत्र में एक और अर्थात चौथे इस्पात कारखाने बनाने की बात होने लगी। अमेरिका पहले तो इस संबंध में उत्सुक हुआ परंतु बाद में आगे नहीं बढ़ा। सोवियत रूस इस विषय में काफी आग्रही रहा तथा 1966 ई. में केन्द्रीय सरकार के साथ बोकारो (बिहार) में 17 लाख टन क्षमता का इस्पात कारखाना बनाने का समझौता हुआ। राउरकेला की तरह ही इस कारखाने में इस्पात की चादरें और कुंडल बनाने की योजना थी। परियोजना इस प्रकार बनाई गई थी कि शीघ्र ही कारखाने की उत्पादन क्षमता 40 लाख टन तक बढ़ाई जा सकती थी। कारखाना बनाने में ज्यादा से ज्यादा सामग्री अपने देश की इस्तेमाल हो इसलिए बड़े–बड़े भारतीय कारखानों मसलन एच. ई.सी., एम.ए.एम.सी., बी.एच.इ.एल. इत्यादि के अधिकारियों को इसका दायित्व सौंपा

गया। इस तरह सम्पूर्ण भारतीय प्रयत्नों द्वारा एक समेकित इस्पात कारखाना पहली बार भारत में तैयार किया गया। हालांकि इसे बनने में आशा से अधिक समय लग गया। पहले चरण का काम पूरा हुआ पाँचवी पंचवर्षीय योजना में।

इतने सालों तक सरकारी क्षेत्र ही तीन कारखानों का कार्यभार चला रहे थे। हिन्दुस्तान स्टील स्वयं एक सरकारी संस्था थी। बोकारों को पहले तो एक अलग कंपनी के रूप में चालू किया गया। परंतु बाद में स्टील अथारिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड नामक एक होल्डिंग कंपनी का गठन किया गया एवं हिन्दुस्तान स्टील तथा बोकारों स्टील दोनों को इसमें मिला दिया गया। बोकारो के द्वितीय चरण का काम पूरा होने में भी बहुत समय लग गया। 1980 में जाकर 40 लाख टन के विस्तारण का काम पूरा हुआ।

इसी बीच फिर भारत सरकार और सोवियत रूस के बीच तीसरी इस्पात साझेदारी आन्ध्रप्रदेश के विशाखापट्टनम बंदरगाह के समीप और एक समेकित इस्पात कारखाना बनाने के लिए हुई। इसकी उत्पादन क्षमता 30 लाख टन निर्धारित की गई। 1980 में प्रथम चरण का काम शुरू हुआ और द्वितीय चरण का काम 1992 ई. में पूरा हो गया। अर्थात आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत में। यह कारखाना राष्ट्रीय इस्पात निगम (RINL) की देख रेख में है।

इस प्रकार द्वितीय पंचवर्षीय योजना से शुरू कर आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, अर्थात् 35 वर्षों के अंतराल में 144 लाख टन इस्पात निर्माण क्षमता की स्थापना हुई। इस विशाल देश की विराट खनिज सम्पदा और निजी साजो सामान बनाने की अबाध क्षमता उपलब्ध होने के बावजूद चतुर्थ/पंचम एवं अष्टम योजनाओं के बीच 23 वर्षों की अवधि में सरकारी कारखानों की उत्पादन क्षमता मात्र 84 लाख टन तक पहुंचना ही संभव हो पाया जो जरूरत से बहुत कम था।

वर्ष 1990 से देश, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की अर्थनीति पर चल पड़ा है। जिससे इस्पात उद्योग क्षेत्र में भी निजी कंपनियों का आगमन हुआ। फलस्वरूप कई नये–नये कारखाने लगने शुरू हो गए। दूसरी ओर टाटा स्टील तथा अन्य सरकारी कारखाने भी नए अनुसंधानों और तकनीकों द्वारा विस्तार करने में लगे हुए थे। सातवीं पंचवर्षीय योजना और उसके बाद के सालों में 1985 से लेकर 2000 तक यह प्रवृत्ति स्पष्ट थी। पुरानी ओपन हार्थ विधि और कच्चा लोहा डालने की तकनीक को छोड़

ऑक्सीजन की मदद से इस्पात बनाने की तकनीक तथा सतत संचकन (कन्टीनुअस कास्टिंग) का प्रचलन बढ़ने लगा। धमन भट्टी में नए–नए आविष्कारों का प्रयोग होने लगा मसलन अधिक सिंटर की मात्रा, ट्वीयर होकर चूर्ण कोयले का प्रवाह इत्यादि। बेलन मिलों का भी आधुनिकीकरण होने लगा। फलतः देश के बड़े–बड़े इस्पात कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता बढ़कर 205 लाख टन से ऊपर पहुँच गई। सारणी–6 में समेकित लोह एवं इस्पात कारखानों की कुल क्षमता दर्शाई गई है।

सारणी–6 : धमन भट्टी/कोरेक्स–बेसिक ऑक्सीजन फर्नेस/ओपन हार्थ विधि पर आधारित समेकित इस्पात काखानों की क्षमता (2001 वर्ष)

क्रम	कारखाने का नाम	उत्पादन विधि	इस्पात की वास्तिविक उत्पादन क्षमता (लाख टन)
1.	राउरकेला स्टील प्लांट–सेल	धमन भट्टी/बेसिक ऑक्सीजन	1,9.00
2.	भिलाई स्टील प्लांट–सेल	धमन भट्टी/बेसिक ऑक्सीजन	3,9.25
3.	दुर्गापुर स्टील प्लांट–सेल	धमन भट्टी/बेसिक ऑक्सीजन	1,8.02
4.	बोकारो स्टील प्लांट–सेल	धमन भट्टी/बेसिक ऑक्सीजन	4,3.60
5.	विजाग स्टील प्लांट RINL	धमन भट्टी/बेसिक ऑक्सीजन	2,9.00
6.	टाटा स्टील प्लांट–टाटा	धमन भट्टी/ओपन हार्थ	3,5.00
7.	इंडियन आयरन एंड स्टील–सेल	धमन भट्टी/ओपन हार्थ	0,3.80
8.	जिंदल विजयनगर स्टील	कोरेम्स/बेसिक ऑक्सीजन	.600
		कुल	20,3.67

इन सब बड़े कारखानों के अलावा छोटी धमन भट्टियों में लोहा गलाकर क्षारकीय ऑक्सीजन भट्टी अथवा विद्युत् आर्क/विद्युत् ऑक्सीजन भट्टी के माध्यम से कुछ एक छोटे इस्पात कारखाने (मिनी स्टील प्लांट) भी स्थापित हुए जिनसे 22 लाख टन इस्पात तैयार किया गया।

सारणी–7 : लोहा गला कर इस्पात बनाने वाले छोटे कारखाने (2001 ई.)

क्रम	कारखाने	इनकी संख्या	इस्पात की वार्षिक उत्पादन क्षमता (लाख टन)
1.	मिनी धमन भट्टी / क्षारकीय ऑक्सीजन भट्टी आधारित	03	16.1
2.	लघु धमन भट्टी / विद्युत् आर्क भट्टी आधारित	03	5.8
3.	लघु धमन भट्टी (इस्पात बनायेंगे)	03	8.2
	कुल	09	30.1

गले लोह पर आधारित कुछेक कारखाने बन रहे हैं। नीलांचल इस्पात निगम तथा मिड–ईस्ट इस्पात। इनकी कुल मिला कर 18 लाख टन की क्षमता होगी। मिड–ईस्ट का निर्माण फिलहाल स्थगित है।

विद्युत् आर्क भट्टी से लगभग पूरा छाँटी (भंगार), (स्क्रैप) इस्पात गलाकर पुनः इस्पात ढाला जाता है। पहले लिखा जा चुका है कि भारत में सर्वप्रथम 1902 ई. में इच्छापुर मेटल और स्टील कारखाने में इस तरह इस्पात बनाया गया था एवम् 1922 ई. में कलकत्ता में हुकुमचंद स्टील कंपनी (आजकल भारतीय स्टील नामक) में इस विधि का अनुसरण किया गया था। वर्ष 1956 में भारत सरकार द्वारा गठित एक समिति ने देश में विद्युत् आर्क इस्पात के वर्तमान तथा भविष्य पर एक रपट पेश भी की थी। उससे पता चलता है कि अप्रैल 1957 में लगभग 23 विद्युत् भट्टियां और 6 छोटी ओपन हार्थ भट्टियाँ चालू थीं जिनका कुल उत्पादन एक लाख पचास हजार टन था। 1960 के पूर्वार्द्ध तक यह सारा विद्युत् आर्क इस्पात, रेल कंपनी द्वारा आवश्यक मशीन और अन्य जरूरतों के लिए साँचों में ढलाई के लिए किया जाता था और थोड़ा बहुत स्प्रिंग स्टील जैसे इस्पात मिश्रातु बनाने के लिए काम में आता था। वर्ष 1966 में देश के भीतर ही इस्पात की माँग बढ़ जाने के फलस्वरूप सरकार ने विद्युत् आर्क इस्पात बनाने की अनुमति दे दी थी। परंतु पुनः 1970 वर्ष में इस्पात की कमी को नियंत्रित करने के लिए विद्युत् आर्क द्वारा इस्पात बनाने को जारी रखने की अनुमति देनी पड़ी।

इसी के साथ तकनीक की उन्नति के लिए एक करोड़ रुपए तक की लागत के कारखानों को कर मुक्त कर दिया गया। फलस्वरूप,रातोंरात कई छोटे–छोटे कारखाने (मिनी स्टील) उभर आये जो साधारण निर्माण कार्यों में आने वाला (कन्स्ट्रक्शन स्टील) इस्पात को कुल्फियों (पेन्सिल इन्गट) में ढालने लगे। इस हालात पर काबू पाने के लिए सरकार को फिर से विद्युत् आर्क कारखानों पर नियंत्रण लगाना पड़ा तथा 1973 वर्ष में सी.ओ.बी. अर्थात् 'व्यवसाय चालू रखो' के अंतर्गत लाइसेंसे का नियम जारी करना पड़ा। इस समय तक देश में तकरीबन 164 विद्युत् आर्क भट्टियों के माध्यम से इस्पात ढलने लगा था। छोटी भट्टियां बीस टन तक ही इस्पात बना सकती थी। वर्ष 1968 में इस तरह के कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता मात्र 500 टन थी। 1973–74 साल में यह बढ़कर 30 लाख टन हो गई। 1986 में मिनी स्टील कारखानों की संख्या 212 हो गई। सरकारी लाइसेंस के हिसाब से उत्पादन क्षमता होती थी सालाना 66.14 लाख टन। हालांकि आखिर तक कई कारखाने चालू नहीं हो सके लेकिन जितने हुए उनकी कुल उत्पादन क्षमता 48.7 लाख टन तक पहुँच चुकी थी। सारणी 8 और 9 में उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम भारत में इन कारखानों का क्षमतावार विवरण दिया गया है –

सारणी–8 : क्षेत्रवार लाइसेंसधारी स्थापित क्षमता के विद्युत आर्क आधारित मिनी इस्पात कारखाने

क्रम	क्षेत्र	ईकाइयों की संख्या		उत्पादन क्षमता (लाख टन)	
		लाइसेंस दिए	स्थापित हुए	लाइसेंस में	स्थापित हुई
1.	उत्तरी	74	65	20.85	16.48
2.	पूर्वी	41	31	11.74	9.87
3.	दक्षिणी	63	51	21.63	14.10
4.	पश्चिमी	34	24	11.33	8.20
	समस्त भारत कुल	212	172	65.85	48.65

(सन्दर्भ – मेंकन द्वारा अध्ययन रपट–1986)

सारणी–9 : क्षमता वार विद्युत् आर्क भट्टियों का आवरन

क्षेत्र	विभिन्न क्षमताओं की भट्टियों की संख्या								
	4 टन	5 टन	8 टन	10–12 टन	15–17 टन	20–25 टन	30–35 टन	40 टन	कुल
उत्तरी	6	42	13	37	12	1	0	0	111
पूर्वी	8	8	2	13	5	6	3	0	45
दक्षिणी	1	12	0	17	7	3	0	0	40
पश्चिमी	9	12	8	28	10	1	3	2	73
भारत	24	74	23	95	34	11	6	2	269

1986 में मेकन द्वारा अध्ययन पर आधारित
टीका – यहाँ प्रमाणित और विस्तृत जानकारी का अभाव है।

वर्ष 1990 में सरकार के आर्थिक सुधारों के अंतर्गत समस्त लाइसेंस और मूल्य नियंत्रण की प्रथा समाप्त कर दी गई। जिसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र में विद्युत् आर्क विधि और नई तकनीकों का उपयोग करने वाले कुछ बड़े और मध्यम क्षमता के इस्पात कारखाने स्थापित हुए। उदाहरण स्वरूप ऐस्सार स्टील (22 लाख टन), इस्पात इंडस्ट्रीज (15 लाख टन), लायंस स्टील (6.6 लाख टन), राजेन्द्र स्टील (1.8 लाख टन) तथा जिंदल स्ट्रिप (5 लाख टन)। इसी समय लगभग दस विद्युत् आर्क भट्टियाँ शुरू हुई जिनकी कुल क्षमता तकरीबन 60 लाख टन थी और साथ ही छोटे–छोटे कई कारखाने बंद हो गए। जो बचे उनकी भी कुल उत्पादन क्षमता में कमी आ गई। अक्तूबर–2001 में लोह एवं इस्पात के विकास आयुक्त द्वारा प्रकाशित रपट से पता चलता है कि 188 विद्युत् आर्क भट्टियाँ लगी जिनकी कुल क्षमता 125 लाख टन सालाना है। हाँ, वर्तमान में सिर्फ भारत ही नहीं सारी दुनिया में इस्पात की माँग में कमी आने से नई पुरानी सब मिलाकर 38 विद्युत् आर्क भट्टियाँ चालू हैं। जिनसे वर्ष में 67 लाख टन इस्पात उत्पादन मिलता है।

प्रेरण (इन्डकशन) भट्टी द्वारा इस्पात उत्पादन

पहले प्रेरण भट्टी का इस्तेमाल बहुत सीमित था। कुछ खास किस्म के इस्पात बनाने अथवा किसी मिश्रातु को गलाकर साँचे में ढालने के लिए। फिलहाल हमारे देश में साधारण इस्पात बनाने के लिए इस भट्टी का इस्तेमाल काफी बढ़ा है। विशेष कारण यह है कि इसमें मूल लागत, स्थान और उत्पादन चालू करने में बहुत कम समय लगता है और दूसरा यह कि कारखाना आसानी से स्थानांतरित किया जा सकता है। इसके अलावा कई तरह की व्यावसायिक सुविधाओं का लाभ भी उठाया जा सकता है। खासकर विद्युत् आर्क की तरह इसमें बिजली तरंगों की अधिकता सर्ज लोड लगने की आशंका नहीं है। इन कारणों से प्रेरण भट्टी की माँग बढ़ती जा रही है। वर्तमान में इनकी संख्या 953 है। विकास आयुक्त की रपट के अनुसार भारत में 650 प्रेरण भट्टियाँ चालू हैं जिनसे 78 लाख टन इस्पात का उत्पादन संभव है। सारणी 10 में विद्युत् आर्क तथा प्रेरण भट्टियों से तैयार किए इस्पात में अंतर दर्शाया गया है।

सारणी–10 : विद्युत् आर्क तथा प्रेरण भट्टियों के माध्यम से इस्पात उत्पादन में अंतर

क्रम	इस्पात की किस्म	विद्युत् आर्क	प्रेरण भट्टी
1.	साधारण इस्पात	51.4%	88.5%
2.	मध्यम/उच्च कार्बन इस्पात	18.1%	3.8%
3.	इस्पात मिश्रातु	25.0%	1.2%
4.	स्टेनलेस स्टील	5.5%	0.9%
5.	अन्य	–	5.67%
	कुल	**100%**	**100%**

स्रोत : लोह इस्पात विकास आयुक्त का कार्यालय

इस्पात–मिश्रातु ओर विशिष्ट इस्पात तकनीक का विकास

साधारण व्यवहार में आने वाले इस्पात के अलावा इस्पात मिश्रातु और खास प्रयोगों के लिए उपयोगी इस्पात तैयार करना भी देश के लिए आवश्यक था। NCAER की एक रपट में 1965–66 तथा 1970–71 में इस प्रकार के इस्पात की जरूरत अंदाजन क्रमशः 389,710 टन तथा 743,760 टन थी। इसका 65 प्रतिशत

इलेक्ट्रिक स्टील, स्प्रिंग, स्टील तथा मशीनों के युंत्र–पुर्जे बनाने के लिए विशेष इस्पात है। बाद में एक और समिति जिसने इस्पात मंत्रालय, योजना आयोग, डीजी–टीडी, ए. एस.पी.ए. आदि संस्थाओं के साथ मिलकर अध्ययन किया था, 1980–80 में इस तरह के इस्पात की जरूरत का आंकड़ा 817,500 टन का दिया जो 1989–89 में 1,775,500 टन हो जाएगा।

इस लक्ष्य को ध्यान में रख भारत सरकार ने वर्ष 1965 में दुर्गापुर में एक लाख टन इस्पात-मिश्रातु बनाने के लिए एलॉय स्टील प्लॉट की स्थापना की। कनाडा के एटलस कंपनी के साथ सहयोगिता का बंदोबस्त हुआ। बाद में इसकी उत्पादन क्षमता 1980 के दशक में बढ़ाकर दो लाख साठ हजार टन कर दी गई। इधर 1970 के दौरान कर्नाटक में विश्वसरैय्या आयरन एंड स्टील वर्क्स में भी इस्पात मिश्रातु बनाने की व्यवस्था की गई एवं उसकी क्षमता एक लाख टन सालाना रखी गई। यह कारखाना जरूरी तकनीक के लिए आस्ट्रिया की वोहलर कंपनी से समझौता बद्ध था। 1972 साल में इस्पात एवं खनिज मंत्रालय ने यह घोषणा की थी कि विद्युत् आर्क विधि से जो छोटे–छोटे कारखाने इस्पात-मिश्रातु बनाते हैं वे आई.एन.आई. की सारणी मुताबिक केवल तीस किस्म का इस्पात बना सकते हैं। 1990 के दशक में इस्पात-मिश्रातु का सालाना उत्पादन लगभग नौ लाख टन था। किस कारखाने में कितना मिश्रातु-इस्पात बनता है, उसकी सही मात्रा बताना मुश्किल है। फिर भी सारणी–11 में कुछ बड़े इस्पात कारखाने के आंकड़े दिए गए हैं।

सारणी–11 : इस्पात-मिश्रातु एवं विशेष इस्पात तैयार करने वाले चुनिंदा कारखाने (2000 वर्ष)

नाम	लाइसेंस क्षमता (टन)	लाइसेंस वर्ष	नाम	क्षमता	वर्ष
इलेक्ट्रो स्टील का स्टिंगस लि.	15000	1961	ओसवाल स्टील्स लि.	50,000	1979
गेस्टकीन विलियम्स लि. (स्टील डिवीजन)	65000	1962	स्टार स्टील प्रा. लि.	36,000	1987
एलॉय स्टील प्लांट, दुर्गापुर	2,60,000	1965 / 1980	जिंदल स्ट्रिप्स लि.	36,000	1984

बिहार एलाय स्टील लि.	40,000	1966	जेनिथ लिमिटेड	30,000	1984
विश्वसरैय्या आयरन स्टील कंपनी	1,00,000	1970	कल्याणी स्टील्स	72,000	1986
हरयाणा ककास्ट लि.	50,000	1974			
फेरो एलायज कार्पोरेशन लि. (स्टील डिवीजन)	36,000	1975			
महिंद्रा यूजीन स्टील लि.	60,000	1975			
स्पेशल स्टीलस लि.	50,000	1978			

पहले बताई गई विभिन्न विधियों द्वारा भारत में मौजूदा इस्पात बनाने की कुल क्षमता 450 लाख टन के आसपास है जो सारणी–12 में दर्शायी गई है।

सारणी–12 : भारत में इस्पात पिंड की समेकित उत्पादन क्षमता (2001 ई.)

क्षेत्र	स्थापित क्षमता (लाख टन)	कार्यकारी उत्पादन क्षमता (लाख टन)
धमन भट्टी / कोरेक्स बेसिक ऑक्सीजन / ओपनहार्थ आधारित समेकित इस्पात संयंत्र		
(क) प्रमुख इकाईयां	210.0	204.0
(ख) अन्य	22.0	22.0
विद्युत् आर्क आधारित इस्पात संयंत्र (समेकित तथा सहयोगी)	115.0	67.0
प्रेरण भट्टी आधारित इस्पात संयंत्र	100.0	75.0
इस्पात मिश्रातु तथा विशेष संयंत्र	10.0	10.0
कुल	435.0	376.0

इस्पात की पुनर्वेलन तकनीक का विकास

इसके अलावा भारत में पुनर्बेलन कारखानों की क्षमता कम नहीं है। इस संबंध में कतिपय जानकारी सारणी–13 में दी गई है।

सारणी–13 : क्षमतावार पुनर्बेलन मिलों की स्थिति (वर्ष 1966 में)

क्षमता (टन प्रतिवर्ष)	ईकाइयों की संख्या (प्रतिशत)	क्षमता लाख टन प्रतिवर्ष (प्रतिशत)
5,000 टन	427 (36.7)	11.04 (5.7)
5,001–10,000	209 (18.0)	16.16 (8.3)
10,000–30,000	362 (31.0)	68.29 (35.2)
30,000–50,000	92 (8.0)	39.31 (20.3)
50,000 से अधिक	72 (6.9)	59.07 (30.5)
कुल	1167 (100)	193.87 (100)

हम जानते हैं कि बड़े–बड़े कारखानों से उत्पादन का एक अंश अर्ध परिसज्जित अवस्था अर्थात बिलेट, ब्लूम एवं स्लैब पिंड के रूप में बाजार में बिकता है। इन सबको फिर से गर्म कर पुनर्बेलित कर दिया जाता है और दूसरे उत्पाद बना लिए जाते हैं। कई छोटे–छोटे विद्युत् आर्क कारखाने हैं। जिनको अपनी बेलन मिल नहीं है। वे लोग पतले छोटे इस्पात के खंड में जिन्हें कुल्फी या पेंसिल ईगंट कहते हैं, ढलाई कर देते हैं और पुनर्बेलन के लिए दूसरे कारखानों को बेच देते हैं। ये छोटे–छोटे इकाईयाँ बाजार की माँग के हिसाब से कई रूपों में इस्पात का बेल्लनकर सकती हैं। 1926 में सबसे पहले कानपुर में एक इस तरह का बेलन कारखाना सिंह इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड के नाम से बना। 1950 तक इस तरह के कई कारखाने काम करने लगे। उनमें उल्लेखनीय नाम हैं – कलकत्ता का गेस्ट कीन विलियम्स लिमिटेड एवं नेशनल आयरन एंड स्टील कंपनी, मुंबई में मुकुंद आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड एवं जमशेदपुर में इंडियन स्टील एंड वायर प्राडक्ट्स लिमिटेड आदि। शुरु में ये कारखाने विदेशों से लाए बिलेट इस्तेमाल करते रहे। वर्ष 1946 में की गई समीक्षा से पता चला कि इस तरह के कोई 32 कारखाने, जिनकी कुल क्षमता एक लाख चालीस हजार टन है, चल रहे हैं। आजादी के बाद इस तरह के पुनर्बेलन कारखानों में काफी इजाफा हुआ क्योंकि तब से छड़, सरिया, चेन, ऐंगल जैसी इस्पात की चीजों की माँग काफी बढ़ गई थी। तब समेकित कारखाने भी बाजार में अपने आधे तैयार माल बिलेट आदि बेचने लगे। इसके अलावा बड़े कारखानों की छँटाई माल (रद्दी) खरीदकर भी ये पुनः बेलन करने लगे। 1978–80 के बीच ऐसे कारखानों की तादाद 1048 हो गई जिनकी

कुल क्षमता साल में 205 लाख टन तक पहुँच गई। इनमें से 40 प्रतिशत छोटे कारखाने थे जिनकी वार्षिक क्षमता 30,000 टन तक थी। मार्च, 2001 में लोह इस्पात विकास आयुक्त की रपट से पता चलता है कि वर्तमान में 792 पुनर्बेलन इकाईयाँ है। जिनकी कुल वार्षिक उत्पादन क्षमता 158 लाख टन है।

छोटी धमन भट्टी

अन्य देशों की तरह हमारे देश में भी बड़े (समेकित) कारखाने, बड़ी धमन भट्टियों पर आधारित हैं। हालांकि इसमें विशाल पूँजी लगती है। गैर सरकारी क्षेत्र में इस तरह के कारखाने बनाना मुश्किल है। इसलिए हमारे देश में भी पिछले दशक से चीन में प्रचलित छोटी–छोटी धमन भट्टियों जो अब भी वहाँ उपयोग हो रही हैं, लगाने में विशेष रुचि दिखाई दे रही है। इसमें लागत कम लगती है और लोह अयस्क, कोक सिंटर आदि के विपुल भंडार की पहले से जुगाड़ करने की जरूरत नहीं रहती। इसके अलावा ये सब कम गुणता का कच्चा माल भी प्रयोग करते हैं। साथ ही जरूरत पड़ने पर बाजार से माल खरीदा जा सकता है – मसलन भंगार लोहा बाजार से लिया, सिंटर की बजाय लोह अयस्क के ढेले बरत लिए इत्यादि। वर्ष 1959 में उड़ीसा के बारबील नामक स्थान पर कलिंग आयरन वर्क्स, जर्मनी के क्रूप के नक्शे–कदम पर बनाया गया, जिसमें कम ऊँचाई कि धमन भट्टी स्थापित की गई हैं जो आज भी चालू हैं। अभी हाल ही जर्मनी, चीन और कार्फ इंजीरियरिंग द्वारा अभिकल्पित छोटी धमन भट्टियां स्थापित की गई हैं जो मुख्यतः संचकित लोहे की ढलाई करती है। इनकी कुल वार्षिक क्षमता 30 लाख टन है। इनमें से दो धमन भट्टियों में गला कर लोहा तैयार होता है। जिससे विद्युत् आर्क अथवा इनर्जी आप्टीमाइज्ड फर्नेस (EOF) के माध्यम से अपेक्षाकृत कम खर्चे में इस्पात बनाना संभव हो पाया है। हमारे देश में भी इस तरह की (मिनी) लघु धमन भट्टियों और विद्युत आर्क के द्वारा इस्पात बनाने की संभावना बन गई है।

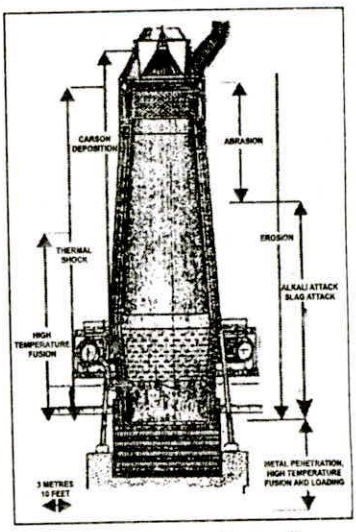

चित्र–1 धमन भट्टी का चित्र

★★★

अध्याय 2

लोह उत्पादन

लोहा बनाने के लिए कच्चा माल

लोहा और इस्पात बनाने के लिए, जिसे कच्चे माल की तरह इस्तेमाल किया जाना है, उसे कई किस्मों में बाँटा जा सकता है, जैसे कि –

- लोह द्रव्य – लोह अयस्क (लोह वाली मिट्टी), सिंटर, पेलेट (लोहे की गुटिकाएं), लोहे का भंगार (रद्दी लोहा)
- ईंधन तथा अपचायी द्रव्य – कोक, कोयला, वाष्प, तेल, प्राकृतिक गैस इत्यादि।
- गालक पदार्थ – चूना, चूना–पत्थर और डोलोमाइट इत्यादि।

इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण है लोह अयस्क। लोहा और इस्पात बनाने के लिए अत्यधिक ताप की भी जरूरत पड़ती है। जिस भट्टी में इन्हें तैयार किया जाता है उसमें इतना ताप सहन करने की क्षमता बनानी पड़ती है कि जिसके लिए ताप प्रतिरोधक ईटों द्वारा इसका भीतरी भाग बनाया जाता है। अतः इस तरह की ईटें ओर ताप प्रतिरोधी द्रव्य बहुत जरूरी हैं।

अयस्क लोहा

लोह–खनिज में मूल लोहा (Fe) ऑक्सीजन के साथ कई रूपों में संयुक्त रहता है : FeO, Fe_2O_3, Fe_3O_4 इत्यादि। इसके अलावा कुछ अवांछनीय तत्व भी इसमें जुड़े होते हैं। जिन्हें गैंग (Gangue) कहते हैं। पृथ्वी के अनेक हिस्सों में लोह अयस्क पाया जाता है। मोटे तौर पर यू.एन.डी.पी. 1970 की रपट के अनुसार सारे संसार में अनुमानित, लोह अयस्क की मात्रा 782 अरब टन है। जिसमें से भारत की खानों में 20 अरब टन लोहे खनिज हैं।

पृथ्वी पर लोह अयस्क की वर्तमान मात्रा

शोधन योग्य लोह खनिज का मुख्य स्थान :

50 करोड़ टन से कम
100 करोड़
900 करोड़
1,000 करोड़
5,000 करोड़
10,000 करोड़
50,000 करोड़

लोह अयस्क की किस्में

मुख्य रूप से मूल लोहे एवं ऑक्सीजन के मिश्रण में भेद पर आधारित श्रेणियाँ बनाई गई हैं। कई बार अवांछित द्रव्यों की मौजूदगी से भी भेद करना पड़ता है। हमारे देश में लोह खनिज मुख्यतः दो प्रकार का मिलता है –

1. **हेमाटाइट अथवा लाल अयस्क Fe_2O_3 :–**

ज्यादातर यह किस्म स्फटिक (क्वार्टजाईट) अथवा मणि (जैस्पर) के साथ संयुक्त है। साधारणतः लोह अयस्क कायांतरित (मेटामॉरफोज) रूप में नहीं पाया जाता। लाल अयस्क निम्नलिखित रूपों में मिलता है।

(क) कठोर चट्टानी रूप :–

इस तरह के हेमाटाइट में संयुक्त स्फटिक (क्वार्टज) पूरी तरह कायांतरित रूप में द्वितीयक (सेकेंड्री) हेमाटाइट के सहयोग से मजबूत और सख्त हो जाता है। यही किस्म सबसे अच्छी लोह अयस्क मानी जाती है। क्योंकि साधारतः 66 प्रतिशत लोहा इसमें मिल जाता है। कभी कभी यह मात्रा 69 प्रतिशत से ऊपर भी होती है। भारतवर्ष में इस प्रकार के खनिज भंडार बैलाडीला, जोड़ा, नोआमुंडी, दक्षिण बाँसपानी अंचल में पाए जाते है।

(ख) पटलित हेमाटाइट :–

इसमें भी 66–68 प्रतिशत मूल लोहा रहता है। चूँकि इस तरह का अयस्क खोखला तथा छिद्रोंवाला होता है, धमन भट्टी में आसानी से गल जाता है। भारत में सभी लोह खदानों से इसी तरह का माल निकलता है।

(ग) बिस्कुटी हेमाटाइट :–

प्राकृतिक रूप में मिलने वाला यह अयस्क नरम और भंगुर होता है। इसके महीन संस्तरों में ऐलुमिना तथा स्फटिक जुड़ जाते हैं। इसमें लोहे को 50–60 प्रतिशत मात्रा होती है। भारत में यह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

(घ) चूर्णित हेमाटाईट (लाल) अथवा ब्लू–डस्ट :–

इस तरह का लोह अयस्क अति महीन चूर्ण (दो सौ मेश से कम) के रूप में पाया जाता है कई बार इस तरह के गोल दाने (ग्रंथिकी) भी मिलते हैं। लोहे की मात्रा 66 प्रतिशत तक रहती है। भारत में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। हाँ, दूसरी किस्मों के मुकाबले यह कम पाया जाता है।

हेमटाइट अयस्क बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ प्रदेश में पाया जाता है। हेमटाइट लोहा, ऑक्सीजन के साथ अलग तरीके से संयुक्त रहता है। इसलिए, इस अयस्क से ऑक्सीजन अलग करना अपेक्षतया आसान है।

2. मैग्नेटाइट अथवा चुंबकीय लोह अयस्क (Fe_3O_4) :–

मैग्नेटाइट (Fe_3O_4) में साधारणतः चुंबकीय शक्ति रहती है। इस खनिज में लोहा तथा ऑक्सीजन बड़ी मजबूती से संयुक्त रहते हैं। इसलिए इसमें से लोहा अलग करना थोड़ा कठिन होता है। कर्नाटक में सबसे अधिक इसकी खाने हैं। हमारे देश का सारे हेमटाइट तथा मेग्नेटाइट का 75 प्रतिशत काम के लायक है। (सारणी – 14 देखें)।

सारणी–14 : भारत में निष्कर्षण योग्य लोह अयस्क के भंडार (लाख टन)

अयस्क श्रेणी	उपलब्धि लायक भंडार			कुल
	सिद्ध	अनुमानित	संभव	
हेमाटाइट (कोटिवार) पिंडक उच्च श्रेणी	5590	1400	700	7690
पिंडक मध्यम श्रेणी	8510	8530	4100	21140
पिंडक निम्न श्रेणी	5270	2990	3510	11770
पिंडक अन्यान्य	2230	1680	3680	7590
चूरा उच्च श्रेणी	2890	320	90	3300
चूरा मध्यम श्रेणी	8870	7790	2500	19360
चूरा निम्न श्रेणी	8020	3980	2610	14610
चूरा अन्यान्य	1420	670	2480	4570
पिंडक तथा चूरा उच्च श्रेणी	490	–	–	490
पिंड चूरा मिश्रित मध्यम श्रेणी	1430	10	–	1440
पिंड चूरा मिश्रित निम्न श्रेणी	600	110	530	1240
पिंड चूरा मिश्रित अन्य	240	10	490	740
(ब्लू डस्ट) लोह धूल	940	360	–	1300
काली लोह ऑकर	30	60	–	90
अन्य	360	140	160	660
उपयोग	46890	28250	20880	96020
मैग्नेटाइट (कोटिवार) धातुकर्म योग्य श्रेणी	11060	2580	1080	14720
कोयला धुलाई लायक (श्रेणी वाशरी)	10	20	20	500
अन्य	90	10	60	160
अनिश्चित कोटि	6500	5290	4790	16500
उपयोग	17660	7820	5950	31430
कुल	64550	36070	26830	127450

स्रोत : भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग

भारतीय अयस्क की गुणता

हमारे देश में ज्यादातर हेमाटाइट, लोहा बनाने का मुख्य अयस्क है। हेमाटाइट के वर्तमान भंडारों में से आधा ही उच्च एवं मध्यम गुणता का है, अर्थात् जिसमें लोह तत्व 62 प्रतिशत से अधिक है। यह अयस्क इतना बढ़िया है कि खदान से निकाले ढेले ही सीधा धमन भट्टी में झोंके जा सकते हैं और इसके चूरे को उच्च ताप पर सिंटरण कर धमन भट्टी में बरता जाता है। हमारे अयस्क में साधारणतः ऐलुमिना (Al_2O_3), सिलिका (SiO_2) से ज्यादा होता है, इसलिए गुणता के हिसाब से यह कुछ निम्नकोटि का है।

लोहे की मात्रा के अनुसार हमारे भंडार इस प्रकार वर्गीकृत हैं :

	अयस्क की श्रेणी	भंडार
उच्च	(लोहतत्व Fe>65%)	12%
मध्यम	(Fe=62.65%)	43%
निम्न	(Fe<62%)	28.8%
अन्य		14.9%
लोह धूल (ब्लू डस्ट)		1.3%

पहले बताया जा चुका है कि भारत में उपलब्ध हेमाटाइट ज्यादातर नरम एवं भंगुर है। यह अयस्क इस्तेमाल के समय थोड़ा दबाव पाते ही टुकड़े–टुकड़े हो जाता है। केवल कुछ खास स्थानों पर ही उच्च कोटि (Fe=60-70%) का हेमाटाइट चट्टानों के रूप में मिलता है। पतले स्तरों वाला बिस्कुटी हेमाटाइट में प्रायः 60 प्रतिशत Fe होता है, परंतु यह धीरे–धीरे टूटते चूरा होता रहता है। उसे चूरे अयस्क को इस्तेमाल करने के लिए इसके पिंड बनाने पड़ते हैं। जिन्हें सिंटर अथवा गुटिका (Pellet) बनाकर धमन भट्टी में डाला जाता है। चूँकि हमारे ज्यादातर अयस्कों में अनेक प्रकार के अवांछित तत्व होते हैं, खान से निकालते ढोते छोटे–छोटे टुकड़े हो जाते हैं और प्रचुर धूल उत्पन्न करते हैं। बरसात में इसकी वजह से इस अयस्क को धमन भट्टी तक ढोना बहुत मुश्किल काम हो जाता है।

इन्हीं सब कारणों से इस लोह अयस्क के विशेषतः धूल वाले अंश को पानी से धोकर साफ करना पड़ता है ताकि गैंग का यथासंभव भाग तथा बारीक लोह–अंश अलग कर दिया जाए तथा बाकी अयस्क को ही इस्तेमाल में लाया जा सके। इससे लोह अंश भी बढ़ जाता है परंतु पानी के साथ महीने लोहा वह जाता है। आजकल कोशिशें चल रही हैं कि पानी में धुले भाग में महीन अयस्क का उद्धार किया जाए जिसे पुनः काम में लाया जा सके। आजकल सिंटर के उपयोग से धमन भट्टी में गलित लोह का उत्पादन बढ़ाया जाता है। इसलिए सिंटर 80–90 प्रतिशत तक भट्टी में झोंका जाता है।

धमन भट्टी में व्यवहार योग्य हेमाटाइट निम्न प्रकार का होता है :–

अयस्क	मूल लोहा	ऐलुमिना तथा सिलिका	आमाप
ढेला	65%+0.5%	अधिकतम 4%	25/30 से 8 मिली मीटर
महीन	64%+0.5%	अधिकतम 4%	8 मिमि से कम
$\frac{\text{ऐलुमिना}}{\text{सिलिका}} = \frac{1}{1.2}$			8 मिमि से अधिकतम 5 प्रतिशत 1 मिमि से निम्नतम 4 प्रतिशत

मेग्नेटाइट अयस्क की गुणता

हमारे देश में प्राप्त इस अयस्क में मूल लोहा 30–40 प्रतिशत ही होता है। अतः इससे लोहा निकालने के लिए पहले विशेष शोधन विधि की जरूरत पड़ती हैं। हमारे मौजूद भंडारों में लगभग 50 प्रतिशत ही उपयोगी मेग्नेटाइट है; यथा

लोह तथा इस्पात पिंड तैयार करने लायक	47 प्रतिशत
कोयला सफाई में उपयोगी	0.2 प्रतिशत
धातुकर्म के लिए अनुपयोगी	52.8 प्रतिशत

लोह – अयस्क की पूर्व–प्रस्तुति

हमारे देश में लोह खनिज का उत्पादन ज़रूरत से ज्यादा है। उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत निर्यात हो जाता है (300–320 लाख टन सालाना), पिंडित अयस्क (गुल्लिका) और परिष्कृत अयस्क का भी बड़ा भाग निर्यात होता है।

परिष्करण

पहले बताया जा चुका है कि खनिज लोहे से गैंग को धोकर बाहर करने पर लोह उत्पादन में सुविधा होती है क्योंकि इस प्रकार परिष्करण कर देने से अयस्क में लोह–अंश बढ़ जाता है। अयस्क में जितना अधिक गैग होता है उतना ही ज्यादा ईंधन अथवा कोक की धमन भट्टी में खपत होती है तथा उत्पादन के अन्य खर्चों में भी बढ़ोत्तरी हो जाती है। इसलिए यथा संभव अधिक से अधिक गैंग को अलग कर दिया जाए।

खदान से निकले लोहे का शोधन चित्र–2 में दिखाया गया है

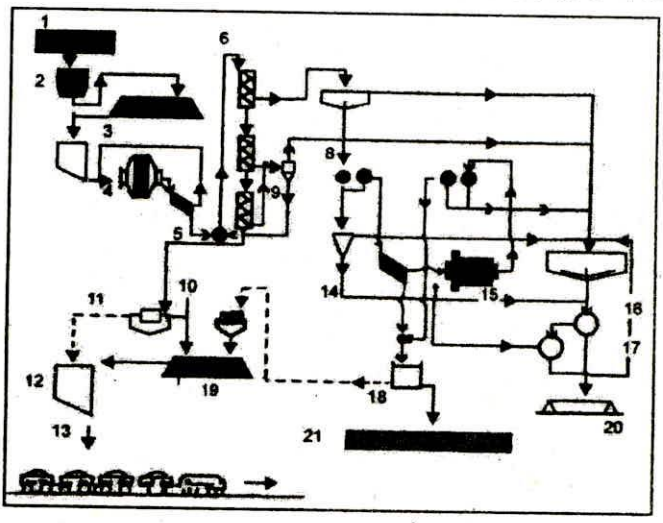

धमन भट्टी सही चलाने के लिए निर्धारित अयस्क की मात्रा के अंदर ही विश्लेषण के अनुरूप धान डालना उचित रहता है। खदान से निकले माल को उसी हिसाब से बड़ी–बड़ी चट्टानों से क्रमशः तोड़ा जाता है इसके बाद चालनियों की सहायता से आमाप के अनुसार उन्हें वर्गीकृत किया जाता है। इसके बाद पानी में डुबाकर अपेक्षित गुरुत्व के मुताबिक अधिकतम लोह–युक्त वाले भाग को अलग कर लिया जाता है कभी–कभी आपेक्षित भींगेपन के सिद्धांत का उपयोग कर झाग की सहायता से उच्च श्रेणी का अयस्क प्राप्त किया जाता है इस प्रकार नाना प्रकार के प्रक्रमों द्वारा अवांछित पदार्थ निकाल बाहर किया जाता है। अंतिम चरण में चुंबकीय

शक्ति द्वारा लोहे युक्त अंश को और अच्छी तरह अलग किया जा सकता है। अति महीन माल भी इस प्रक्रम द्वारा कम और ज्यादा लोह अंश के हिसाब से निम्न हिस्सों में बाँटा जा सकता है धुले माल को पिंडित कर इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि धमन भट्टी में सीधे डाल देने से उच्च हवा के दबाव में उड़कर बाहर आ जाएगा।

धमन भट्टी निर्विघ्न लगातार चालू रखने के लिए मिश्रण को भट्टी में झोंकने से पहले अच्छी तरह मिला लेना ज़रूरी है इससे ईंधन कम/खर्च होता है गला लोहा ऊँची गुणता का प्राप्त होता है और भट्टी की उत्पादकता बढ़ जाती है। आयन और रासायनिक विश्लेषण का ध्यान रखकर लोह अयस्क में समान अनुपात में चूना पत्थर मिला कर भट्टी में डाले जाते हैं इससे अयस्क का अपचयन अच्छी तरह होता है और लोहा निश्चित ताप तक गलने लगता है तथा स्यंद (अनुकूल) का वलय बनाने लगता है इससे भट्टी के अंदर वायु प्रवाह बनाया जा सकता है तथा भट्टी सतत काम करती है। अनुभव से पाया गया है माल अच्छी तरह मिला कर डालने से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। ईंधन समुचित खर्च होता है और उत्पादन लागत कम रहती है।

सपिंडन (Agglomeration)

पहले बताया जा चुका है कि धमन भट्टी में अधिकतम छोटे आमाप का माल झोंकने से कोई फायदा नहीं होता अतः इस मिश्रण के माल को ही साथ मिलाकर संपिंडित किया जाता है और जरूरत के मुताबिक अयस्क का रासायनिक विश्लेषण देखकर धमन भट्टी की तह पर कुछ प्रतिशत झोंका जाता है। सामान्यतः पिंड बनाने के लिए दो विधियाँ प्रयोग में लाई जाती है सिंटरण तथा गुलिकायन इनका प्रधान उद्देश्य लोह अयस्क का यथासंभव अपचयन तथा भट्टी में टिकने लायक बनाना होता है।

सिंटरण

धमन भट्टी में सीधे 8 मिली मीटर का अयस्क नहीं झोंका जा सकता क्योंकि बाहर निकलने वाली गैंसों के उच्च दबाव में हलका माल उड़ जाता है अतः सिंटरण मशीन द्वारा पिंडित करना जरूरी होता है। इसी मशीन में ज्यादातर एक अथवा कभी ज्यादा स्टैंड होते हैं। हर धार का आयतन मशीन की उत्पादन क्षमता पर निर्भर करता है। 50* 5 वर्ग मीटर से लेकर 350* 350 वर्ग मीटर तक के धार हमारे देश में बनाए जाते हैं जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता 4 लाख टन से 30 लाख टन तक है। कोई धार तो 100 मीटर लंबी तक होती है। लोहे अयस्क तथा कोक का मोटा (चूरा) महीने चूना पत्थर (कभी–कभी डोलोमाइट चारा) के साथ मिलाकर सभी को मशीन की

चक्राकार घूर्णी चालनी पर हवा में सजाया जाता हैं। सबसे निचली तह दर तह वापिस आया सिंटर का चूरा बिठाया जाता है। चालनी के नीचे से पंप की सहायता से हवा उन मिश्रित तहों के बीच से होती हुई खींची जाती है माल के साथ मिलाया गया कोक का चूरा जल उठता है। जब ऊपरी तह पर आग लगाई जाती है और हवा के साथ संयोग होता है तो ताप बढ़ता जाता है और शीघ्र ही निचली वाली तह पर 1400°C के आसपास पहुँच कर माल का पिंडन शुरू हो जाता है ऊपर वाली तहों से ठंडी हवा खींचती निचली तह तक पहुँचकर सिंटर को ठंडा करती है। खुद गर्म हो कर हवा बाहर निकल जाती है। सिंटर तैयार होने में 15 से 20 मिनट का समय लगता है चित्र 4 में माल के भींगेपन का और चित्र 3 में सिंटरण प्रक्रम दर्शाया गया है।

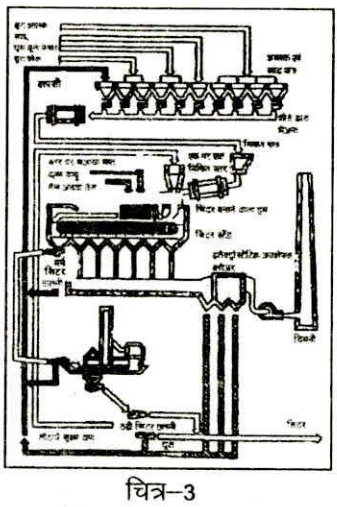

चित्र–3

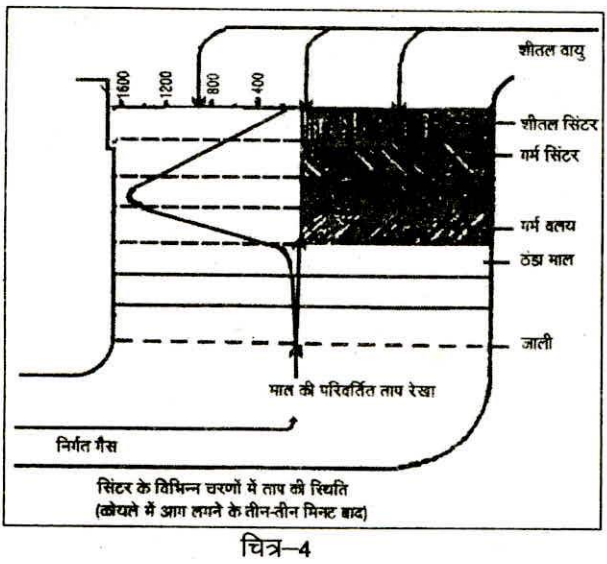

चित्र–4

चित्र 4 : सिंटर के विभिन्न चरणों में ताप की स्थिति
(कोयला आग लगाने के तीन मिनट बाद)

पिंडन के समय अयस्क के कण एक दूसरे से मज़बूती से जुड़ जाते हैं और इन के बीच मजबूत आबंध बन जाते हैं जो संगलन आबंध कहलाते हैं।

मशीन का साँचा चक्र जब घूम कर दूसरे छोर पर पहुँता है सिंटर कहीं निकल न जाए। इसलिए सिंटर के बड़े–बड़े ढेले गर्म अवस्था में ही तोड़ लिए जाते हैं। समुचित माप के बनाकर सिंटर के ढेले धमन भट्टी को भेज दिए जाते हैं। चूरा सिंटर पुनः मशीन की पहली तह में इस्तेमाल हो जाता है।

ये सिंटर खंड–खंड : पर्याप्त भेद्यता और अपचायकता के होने के कारण धमन भट्टी के लिए विशेष उपयोगी होते हैं।

मोटे तौर पर सिंटर दो प्रकार का होता है : 1. अम्लीय सिंटर जब अयस्क क्षारीय पदार्थों से लगभग रहित होता है तथा सिंटर–मिश्रण बनाते भी कोई क्षार पदार्थ नहीं मिलाया जाता। 2. क्षार–प्रधान सिंटर : जब अयस्क में क्षार तत्व मौजूद रहता है अथवा मिश्रण बनाते डाला जाता है। गालक (Flux) के हिसाब से सिंटर दो भागों में बाँटा जा सकता है। मसलन स्वगालकित (Self-Fluxing) तथा अतिगालकित (Superflux) सिंटर।

1. स्वगालकित सिंटर का मिश्रण बनाते समय चूना उतनी ही मात्रा में डाला जाता है ताकि CaO तथा SiO_2 का अनुपात, धमन भट्टी के धातुमल से रासायनिक मेल खा सके।
2. अतिक्षारीय सिंटर का मिश्रण बनाते समय चूनापत्थर की मात्रा इतनी अधिक डाली जाती है कि धमन भट्टी में लोहा गलाते समय अलग से चूना डालने की जरूरत न रहे। अतः इस सिंटर में CaO तथा SiO_2 का अनुपात मोटे तौर पर 1:4 या उससे भी अधिक रहता है।

गुटिकाओं का प्रयोग

हमारे देश की लगभग सभी बड़ी धमन भट्टियों में गुटिकाओं के स्थान पर सिंटर का इस्तेमाल होता है। हो सकता है भविष्य में मुटिकाओं का प्रयोग होने लगे। अमरीका में गुटिकाओं का चलन ज्यादा है। जापान में भी थोड़ी मात्रा में गुटिकाएं डाली जाती हैं।

सिंटर के संघटन पर ऊर्जा की खपत निर्भर करती है।

मैग्नेशिया (MgO) तथा (Al_2O_3) ऐलुमिना की उपस्थिति भी ऊर्जा की खपत पर असर डालती है।

गुटिकायन

बहुता महीन लोह अयस्क को पानी से भिगोकर उसमें कोई बाइंडर जैसा पदार्थ मिलाकर 10–15 मिनट किसी चौड़े थाल से गोलाकार अथवा ड्रम जैसे लंबे पात्र में लिटाकर घुमाने से महीन चूर्ण छोटी–छोटी गुटिकाओं का आकार लेने लगता है। ऐसी गुटिकाओं को कच्ची गोलियाँ कह सकते हैं। बाद में इन्हें सुखाकर 1000 डिग्री सेल्सियस ताप पर गर्म करने से ये सख्त बन जाती हैं। धमन भट्टी में ऐसी सख्त गोलियाँ सिंटर की तरह काम दे सकती है। बस इतना ही ध्यान रखा जाता कि धमन भट्टी के उच्च ताप पर ये टूट न जाए।

सिंटर उपयोग के फायदे

सिंटर के इस्तेमाल से धमन भट्टी का काम बहुत आसान हो जाता है अर्थात् –

क. पिंडित सिंटर सख्त, मजबूत समान आमाप का होने की वजह से धमन भट्टी में बोझ की भेद्यता बढ़ जाती है। इसलिए गुटिका से सिंटर ज्यादा लाभदायक है। सिंटर इस्तेमाल करने पर भट्टी में गैस और माल के बीच अभिक्रियाएं अच्छी तरह हो पाती हैं जिससे अयस्क का अपचयन शीघ्र हो जाता है।

ख. सिंटर बनाते वक्त ही कोयले तथा अयस्क में मौजूद सल्फर की मात्र 60–70 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

ग. क्षारीय सिंटर में चूना पत्थर का चूर्ण मिला होने की वजह से धमन भट्टी में चूना पत्थर की मात्रा घटाई जा सकती है। इससे कोक की बचत होती है।

घ. धातुमल में रासायनिक प्रक्रिया उन्नत किस्म की होती है जिससे धातुमल का गलन जल्दी हो जाता है।

संक्षेप में कहे तो सिंटर के इस्तेमाल से धमन भट्टी की उत्पादकता बहुत बढ़ जाती है। उसका मुख्य कारण धमन भट्टी के अंदर गैसों और हवा का प्रवाह, सिंटर की उपस्थिति में गहन और सुचारु रूप से होता है।

गुटिका प्रयोग के गुण व दोष

क. गुटिका की अपचयन क्षमता बहुत अच्छी है।

ख. गुलिका गोल अथवा अंडाकार होने की वजह से धमन भट्टी में गैस तथा हवा के आने जाने का रास्ता सुगम रहता है।

ग. भट्टी में अधिक माल झोंका जा सकता है जो अधिक समय तक गैस के संपर्क में रहता है तथा कोक का सही इस्तेमाल हो पाता है, फलतः कोक की खपत कम होती है।

घ. गुटिका को एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जा सकते हैं, अयस्क का बहुत ज्यादा नुकसान नहीं होता। सिंटर के लिए ऐसा संभव नहीं है।

ङ. गुटिका अपचयन के लिए सबसे अच्छा कच्चा माल है परंतु –

दोष

1. इस पर उत्पादन खर्च ज्यादा होता है क्योंकि अयस्क को अति महीन बनाना पड़ता है नहीं तो गोली नहीं बनती।
2. धमन भट्टी में ताप ज्यादा होता है जिससे गुटिका के आपस में जुड़ जाने का भय बना रहता है, इससे गैस के आने जाने में असुविधा होती है।
3. सिंटर की तुलना में गैस और हवा का प्रवाह कम होता है।

ईंधन

धमन भट्टी में ईंधन के रूप में कोयला, कोक, गैस अथवा खनिज तेल का उपयोग होता है। सबसे ज्यादा कोक ही इस्तेमाल किया जाता है। कोक केवल ईंधन का ही काम नहीं देता बल्कि लोह अयस्क में विद्यमान ऑक्सीजन को निकाल बाहर करता है और अयस्क को धातु लोह में बदल देता है। ऊँचे ताप पर लोहा गल जाता है। गला हुआ लोहा, कोक की सतहों से नीचे पिघल कर जमा हो जाता है और यथासंभव कार्बन की मात्रा को घोल लेता है।

कोयला

लोहा बनाने के लिए-खास किस्म का कोयला चाहिए। साधारण कोयला टूट जाता है। अतः धमन भट्टी में इस्तेमाल लायक नहीं होता। खास किस्म के कोयले को चूर्ण

कर लगभग वायूशून्य वातावरण वाले बंद कक्ष में 1000 डिग्री सेल्सियस पर गर्म करने पर चूरा कोयला के कण एक–दूसरे से जुड़कर पिंड रूप में सख्त आकार ले लेते हैं। इस पिंड को कोक कहते हैं। कोक धमन भट्टी में लोहा बनाने के काम आता है। कोक तैयार करने में जिस खास किस्म के कोयले की जरूरत होती है उसे कोककारी (कोकिंग) कोयला कहते हैं। उच्च गुणता के कोकिंग कोयले को प्राईम, औसत गुणता वाले को मध्यम तथा निम्न प्रकार के कोकिंग कोयले को हीन कोककारी कोयला कहा जाता है। कोक मुख्य रूप से निम्न कार्य करता है:

क. ईंधन के तौर पर भट्टी में आवश्यक ताप बनाना – कोक का कार्बन जलकर CO_2 (कार्बन डाईऑक्साइड) बनाता है। $C+O_2=CO_2$ की रासायनिक प्रक्रिया में प्रति किलोग्राम कार्बन जलने से 8151 Kcal (किलो कैलोरी) ऊर्जा प्राप्त होती है। ताप का एक हिस्सा गर्म हवा के साथ भट्टी के बाहर निकल जाता है।

ख. अयस्क से संयुक्त ऑक्सीजन को अपचयन प्रक्रिया द्वारा मुक्त करना – $Fe_2O_3+3CO=2Fe+3CO_2$।

ग. अन्य धातुमल पदार्थों से मैंगनीज, सिलिकन, फास्फोरस इत्यादि द्रव्यों से संयुक्त ऑक्सीजन को निकाल कर बाहर करना।

घ. भट्टी में गैस और हवा के यातायात का रास्ता सुगम बनाना तथा भट्टी के सारे बोझ – लोह अयस्क, सिंटर, गुटिका इत्यादि के भार का वहन करना।

कोक की भेदयता लोह अयस्क एवं सिंटर आदि से कहीं ज्यादा होती है। इसके अलावा कोक भट्टी के निचले हिस्से में गर्म वायु के संपर्क में आता है। हमारे देश में कोयला प्रधानतः गोंडवाना अथवा पेलीजोयक युग का है। इस प्रकार का कोयला विटूमेन और उप विटूमेन मिलते जलना शुरू कर देता है और सख्त बना रहता है। इस कारणों से कोक की भौतिक एवं रासायनिक गुणता पर ध्यान रखना बहुत जरूरी होता है। इसमें सल्फर और फास्फोरस कम होता है किंतु राख की मात्रा अधिक होती है। यह राख धातुकीय होती है और बहुत सूक्ष्म रूप से मिली होती है। सारणी पंद्रह में हमारे देश में कोकिंग और साधारण कोयले का उपस्थित परिमाण दिखाया गया है। चित्र सात में भारत की प्रधान कोयला खदान तथा कोयला वितरण व्यवस्था दिखाई गई है। भारत में कुल कोयले का प्रायः सोलह प्रतिशत कोकिंग, जिसका अठारह

प्रतिशत मात्र प्राईम कोकिंग प्रकार का है। चौदह प्रतिशत मध्यम कोकिंग गुणता तथा आठ प्रतिशत निम्न कोकिंग प्रकार का है। एक मात्र झरिया अंचल में ही बढ़िया कोकिंग कोयला मिलता है। सारणी सोलह में हमारे देश में मौजूद कोकिंग कोयले की खदानें बताई गई हैं। मध्यम कोककारी कोल का लगभग नब्बे प्रतिशत भाग झरिया, पर्व तथा पश्चिम बोकारो तथा उत्तर एवं दक्षिण कर्णपरटा अचंल में स्थित है।

सारणी–15 : भारत में समग्र कोयले कि उपलब्धता (लाख टन)

	श्रेणी	प्राप्त	अनुमानित	प्रमाणित	कुल
अ.	प्राईम कोकिंग कोयला	42250	10750	–	53000
ब.	मिडियम कोकिंग कोयला	96700	112490	11980	220540
स.	सेमी कोकिंग कोयला	4980	9730	8750	23460
द.	उपयोग कोकिंग कोयला	143300	132970	20730	297000
य.	गैर कोकिंग कोयला	468080	721280	473880	1663240
	कुल कोयला	611380	854250	494610	1960240

सारणी–16 : भारत की बड़ी कोयला खदाने तथा उनकी क्षमता – कुल उपस्थिति (%)

क्रम	खदान का नाम	कुल मौजूदगी (लाख टन)	कोकिंग	गैर कोकिंग कोयला
1.	झरिया	194170	59	41
2.	रानीगंज	272370	06	94
3.	बोकारो	069880	97	03
4.	दक्षिण कर्णपुरा	038540	07	93
5.	उत्तर कर्णपुरा	038540	25	75
6.	कोरवा	055130	–	100
7.	तालचेर	228550	–	100
8.	इब–घाटी	187020	–	100
9.	सिंगरौली	92070	–	100
10.	वर्धा घाटी	36460	–	100
11.	गोदावरी घाटी	100860	–	100
12.	मकुम	002360	कुछ	कुछ

गला हुआ लोहा बनाने के लिए कच्चे माल में सबसे जरूरी और कीमती कोक होता है। कोक की गुणता पर ही भट्‌टी की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। कोक के भौतिक और रासायनिक गुण में स्वाभाविक रूप से कोई परिवर्तन न हो तो अच्छा है। सारणी–17 में विदेशी कोक की तुलना, हमारे देश के कोक से की गई है।

सारणी–17 : भारतीय और विदेशी कोक की गुणता

मानदंड	सेल	टाटा स्टील	विदेशी
राख %	20 से 24	16 – 22	5.5 – 7.5
एम 10 %	8.5 – 12	6 – 7	5.5 – 7.5
एम 40 %	75 – 82	84 – 85	84 – 89
सी.आर.ई. %	19 – 30	22 – 28	18 – 60
सी.एस.आर. %	50 – 67	59 – 65	58 – 60

औसतन भारतीय कोयले में राख 18 प्रतिशत विदेशी कोयले में 8 प्रतिशत अर्थात 10 प्रतिशत कम होती है। पूरी तरह विदेशी कोयला इस्तेमाल करें तो कोक में राख की मात्रा 11.5 प्रतिशत होगी अर्थात हमारे देश की धमन भट्‌टियों में विदेशी कोयले से तैयार कोक का सौ प्रतिशत इस्तेमाल करने से उत्पादन क्षमता काफी बढ़ जाएगी, भट्‌टी अधिक सुचारु चल पाएगी और धातुमल की मात्रा भी कम जाएगी। आजकल हमारी बड़ी–बड़ी धमन भट्‌टियों के लिए 25 से 60 प्रतिशत या इससे भी अधिक आयतित कोक का इस्तेमाल हो रहा है। कोयला अच्छा होगा तभी कोक अच्छा बनेगा। ऐसा नहीं हैं विभिन्न स्थानों से जो कोयला आता है उसे अच्छी तरह मिलाकर और यथासंभव समान आमाप (–3 मिलीमीटर) को चूरा बनाकर कोक के साथ में डालना उचित रहता है। तभी समग्र कोक में भौतिक तथा रासायनिक गुणता समान रखी जा सकती है। कोक चूल्ही में से सबसे पहले कोयले से वाष्प निकालती है। फिर और गर्म होने पर कोयले से वाष्प धीरे–धीरे गैसें बनकर बाहर निकल जाती हैं। तब कोयले के कण तैरने लगते हैं और आहिस्ता आहिस्ता परत के ऊपर परत बैठने लगती है। इन परतों को नमनीय अथवा प्लास्टिक कहते हैं। चूल्ही में कोयला पहले अर्द्ध कोक बनाता है फिर ज्यादा समय रहने पर सख्त होकर पूर्ण कोक में बदल जाता है। कोक बनने के आखिरी चरण में कोयले का आयतन थोड़ा कम हो जाता है तथा चूल्ही के दीवाल

से अलग हो जाता है। कोक पिंड में कई जगह दरारें पड़ जाती हैं। तब ताप 1000 डिग्री सेल्सियस से ऊपर पहुँच जाता है। गरम कोक को चूल्ही से ढेलकर बाहर ठंडा कर दिया जाता है – कई बार पानी के फब्बारे डालकर और कई बार गैसों द्वारा ठंडा किया जाता है (डाई क्वेंचिंग)। ठंडा करने के बाद कोक को छंटाई के लिए भेजा जाता है यहाँ धमन भट्‌टी के लायक कोक को तोड़कर नियत आमाप में लाया जाता है। इसके बाद चालनी की सहायता से 10 मिलीलीटर से छोटे टुकड़े (-10 mm) अलग कर दिए जाते हैं जिन्हें बतौर ईंधन इस्तेमाल किया जाता है।

कोक की गुणता सिर्फ कच्चेमाल पर ही निर्भर नहीं करती। कोक की चूल्ही भी पूरी सतर्कता से चलानी पड़ती है। निम्नलिखित कारकों पर भी कोक की गुणता निर्भर करती है –

क. कोयला कितना महीन पीसा गया है, एवं असका औसत घनत्व कितना है।

ख. चूल्ही के कक्ष का माप कितना है।

ग. चूल्ही की दीवाल की मोटाई कितनी है।

घ. ताप बढ़ाने की गति क्या है।

ड़. कक्ष से निकलने वाली गैस का ताप।

च. एक के बाद दूसरे कक्ष से कोक पिंड धकेलने का अंतराल कितना है।

कक्ष से निकलने वाली गैस को ठंडा कर पीट (अलकतरा), अमोनिया (NH_3) इत्यादि रासायनिक द्रव्य अलग–अलग तरह से बाहर कर लिए जाते हैं। बाद में वह गैस कारखाने में कोक अवनों को गर्म करने के काम में आती है इस गैस को कोक अवन गैस कहा जाता है।

चूँकि सारी पृथ्वी पर कोक कोयले की कमी है इसलिए कई पद्धतियाँ बनी हैं जिनका मूल उद्‌देश्य कोक की गुणता बढ़ाकर धमन भट्‌टी में इसकी खपत कम करना है एवं कुछ निकृष्ट कोटि के कोयले का कोक बनाने के लिए उपयोग करना है। हमारे देश में भी ऐसी कुछ पद्धतियाँ लागू की गई हैं। उदाहरणार्थ :

क. कोक अवन में झोंकने से पहले कोयले की विशेष तैयारी जैसे – आंशिक कोयले का पिंडीकरण कोक अवन के लिए चूरा किए गए कोयले का एक अंश (लगभग 40 प्रतिशत) छोटे छोटे आकार में पिंडीकृत कर उसे बाकी के

चूरा कोयले के साथ मिलाकर चूल्ही में गर्म करने पर प्राप्त कोक बेहतर साबित हुआ है। निम्न कोटि के कोयला चूरे को इस प्रकार पिंडीकृत कर उपयोग किया जा सकता है। जिससे बढ़िया कोक कोयले की बचत संभव है।

ख. कोयले की छटाई कर चूरा करना – इस पद्धति में कोक कोयले को श्रेणी वार अलग कर लिया जाता है और निश्चित मात्रा में चूरा किया जाता है। कोई–कोई श्रेणी का कोयला दूसरे से ज्यादा महीन किया जाता है फिर उसे बाकी चूरे में मिला दिया जाता है। इस प्रकार से तैयार कोक उन्नत गुणता का होता है।

ग. नई प्रकार की कोक अवन का प्रयोग जैसे – स्टाम्प चार्जिंग – इस पद्धति में कोयला चूरे को अवन के आमाप जितने एक बक्से में भरकर मशीन की सहायता से अच्छी तरह पिटाई की जाती है जिससे चूरा धनीभूत हो जाता है। बाद में इस धनीभूत पिंड को अवन में धुसा कर कोक बनाया जाता है। इस प्रकार अवन में भरे कोयला चूरे का घनत्व बढ़ जाता है और कोक की गुणता बेहतर हो जाती है। भारत में एक मात्रा टाटा स्टील ही इसका प्रयोग कर रहा है।

घ. ऊँची अवन – कोक अवन की ऊँचाई साधारणतः 5 मीटर होती है पर इसके बदले अगर 7 या 8 मीटर ऊँची अवन में कोयला चूरा भरने से कोयला चूरे का घनत्व बढ़ जाता है। इसके कोक की शक्ति बढ़ जाती है। विजाग स्टील तथा टाटा स्टील में ऐसी अवन स्थापित की गई है।

ड. शुष्क शीतलन – कोक तैयार करने के बाद पानी के बजाय नाइट्रोजन गैस से अलग कक्ष में नरम कोक को ठंडा करने पर कोक की गुणता बढ़ती है और उसकी ताप ऊर्जा का इस्तेमाल अधिक होता है।

पहले ही बताया जा चुका है कि कोक की गुणता सुधारने से धमन भट्टी में इसकी खपत कम हो जाती है। इसके अलावा कोक की खपत चूरा कोयले के प्रयोग से भी की जा सकती है। इसमें चूरा कोयला, भट्टी में ट्वीयरतक पहुँचाया जाता है और इसके साथ भेजी जा रही गर्म हवा में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाई जाती है। कोयले

के अनुपात में ही कोक की खपत कम होती है। एक टन कोयला लगभग 0.9 से 1.2 टन कोक के समान होता है। यह अनुपात निश्चित ही कोयले और कोक दोनों की गुणता पर निर्भर करता है। इस विकल्प के अपनाने पर कोकिंग कोयले की काफी बचत होती है। एक टन गला लोहा तैयार करने में 100 से 250 किलो तक चूरा कोयले का उपयोग किया जा सकता है। हमारे देश में 150 किलो से अधिक ऐसा नहीं हो पाया। यह कोयला कोकिंग कोयले से बहुत घटिया होता है। लगभग गैर कोकिंग कोयला ही होता है।

गालक (फलक्स)

लोह अयस्क का कचरा (जैसे कि सिलिका और ऐलुमिना) तथा कोक कोयले की राख को गलाने में काफी ऊँचे ताप (1700–2000 डिग्री सेल्सियस) की जरूरत होती है। लोहा और इस्पात जिस ताप पर तथा जिस प्रक्रम से तैयार किए जाते हैं उसमें यह सब धातुमल और राख खुद नहीं गल सकते। इसलिए ऐसी कोई वस्तु भट्टी के धान में डाल देते हैं जो अयस्क के धातुमल तथा कोक की राख के साथ मिलकर 1300 से 1400 डिग्री सेल्सियस ताप पर गलित अवस्था में आ जाए। ऐसी वस्तुओं को गालक कहते हैं। इनकी सहायता से जो धातुमल बनता है वह 1250–1350 डिग्री सेल्सियस तक पर्याप्त तरल अवस्था में आ जाता है। यह गालक अनेक प्रकार से लोह एवं इस्पात उत्पादन के विभिन्न चरणों में डाला जा सकता है। मसलन, लोहा बनाने से पहले सिंटर अथवा गुटिका तैयारी में लोहा गलाते समय अथवा गले लोहे के लैडल में तथा यहाँ तक कि गला लोहा ढलाई करते वक्त भी।

इस प्रक्रिया की सुविधा यही है कि गालक, भट्टी में उपस्थित अवांछित तत्व जैसे सिलिका–ऐलुमिना, फास्फोरस–सल्फर इत्यादि को सहज ही गले लोहे से अलग कर धातुमल में खींच लाते हैं। सल्फर लगभग सारा ही कोक से आता है। धमन भट्टी में फास्फोरस को धातुमल में खींचकर बाहर नहीं किया जा सकता। भट्टी के बाहर अथवा इस्पात तैयार करते वक्त फास्फोरस की सफाई का इंतजाम किया जाता है।

चूना अथवा चूना पत्थर सर्वोत्तम गालक होता है। ये दोनों ही ज्यादातर काम में आते हैं। इसलिए चूनापत्थर की गुणता विशेष कर जाँच लेनी चाहिए। अन्य गालकों में बॉक्साइट, डोलोमाइट तथा फलोरस्पार उल्लेखनीय है। जितना गालक चाहिए उतना हिसाब से ही डालना चाहिए नहीं तो उत्पादन का खर्चा कई तरह से बढ़ जाता है।

उच्चतापसह पदार्थ (रिफ्रैक्ट्रीज)

गला हुआ लोहा और इस्पात बनाते समय 2400 डिग्री सेल्सियस तक ताप पहुंच जाता है। विशेषकर धमन भट्टी के कुछ खास हिस्सों में। साधारणतः किसी भी पदार्थ के लिए इतना ताप सहलेना मुश्किल होता है। इसी वजह से भट्टी अथवा रासायनिक अभिक्रियाओं के पात्र को उपयुक्त तापरोधक वस्तुओं द्वारा ढक दिया जाता है, जिस पर ताप का प्रभाव होने वाला हो। ये उच्चतापसह पदार्थ ज्यादातर अधात्विक अथवा ऑक्सीजन युक्त धात्विक पदार्थों से बने होते है जिनकी तापरोधक क्षमता अच्छी होती है कम से कम 1580 डिग्री सेल्सियस।

ताप का प्रतिरोध करने के अलावा दो और गुण इन वस्तुओं में होने जरूरी हैं –

क. दाब सहने की शक्ति।

ख. रासायनिक निष्क्रियता।

अर्थात लोहा और इस्पात तैयार करते समय तापरोधक वस्तुओं के भौतिक तथा रासायनिक गुणधर्म यथासंभव बदलने नहीं चाहिए।

मुख्य प्रक्रिया पूर्ण करने के लिए पात्र विशेष का तापप्रतिरोधी आवरण भी उसी पात्र के अनुरूप निर्दिष्ट आकार में ताप प्रतिरोधी पदार्थों से बनाकर ईटों की तरह आग में पका लिया जाता है। ईटों को सजाकर आवरण बनाने की जगह ताप प्रतिरोधी पदार्थों का लेप भी पात्र में अंदर की ओर किया जा सकता है। आजकल इसी तरह के प्रलेपित साँचों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। इससे अतिरिक्त सुविधा मिलती है।

कुछ प्रचलित उच्चताप सह पदार्थ निम्नलिखित हैं :–

सिलिका, अग्निमृत्तिका, मुलाइट, कार्बोरंडम, मैग्नेशिया, कार्बन, ग्रैफाइट इत्यादि।

धमन भट्टी संयंत्र

हमने देखा है कि धमन भट्टी में नाना प्रकार का कच्चा माल विशाल मात्रा में इस्तेमाल होता है। इस संयंत्र के महत्वपूर्ण भाग निम्नलिखित हैं :–

क. धमन भट्टी

ख. ढलाई शाला

ग. कच्चा माल जमा करने का आगार (बंकर) तथा माल ढोने की व्यवस्था

घ. हवा गर्म करने के चूल्हे (स्टोव) तथा गर्म हवा का पाइप

ड़. गैस निकासी तथा सफाई के लिए पाइप

च. माल परिवहन व्यवस्था।

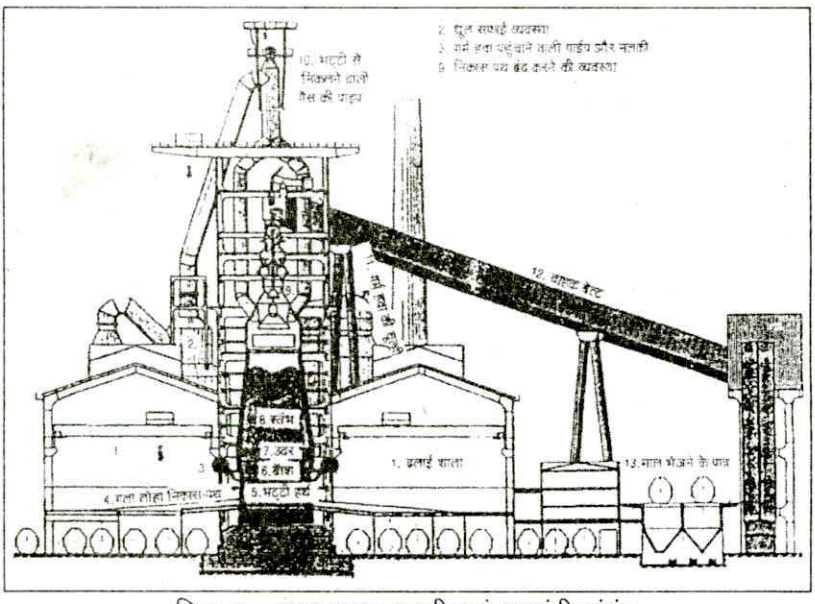

चित्र–6 : समग्र धमन भट्टी एवं अनुषंगी संयंत्र

1. ढलाई शाला
2. धूल सफाई व्यवस्था
3. गर्म हवा का पाइप और ट्वीयर

धमन भट्टी की कार्य पद्धति

धमन भट्टी असल में एक अविराम कार्यरत खडी चूल्ही हैं। गला लोहा अथवा पिग आयरन बनाने का यह श्रेष्ठ प्रक्रम है। यह स्तंभ चूल्ही काफी हद तक केले के फूल की आकार की है जिसका फैलाव वृताकार है इस्पात की मोटी चादर से बनी यह भट्टी भीतर से उच्चतापसह ईटों से ढकी होती है। निचला हिस्सा उच्चतापसह ईटों के आवरण से लगभग जुड़ा रहता है। इसके अलावा इस आवरण से संलग्न इस्पात

की चादर की ठंड़ा रखने के लिए अनेक बंदोबस्त किए जाते हैं। अधिकांश भाग जल प्रवाहित कर चारों तरफ से ठंडा किया जाता है।

चूल्ही की ऊँचाई और व्यास, उत्पादन क्षमता पर निर्भर करता है। चूल्ही की कार्यकारी ऊँचाई मान लिया जाए अगर 35 मीटर हो तो माल बोझाई की मशीन उपकरण तथा गैस निकासी के पाइप आदि मिलाकर कुल ऊँचाई 100 मीटर के आसपास होगी। ऊपर से अगर शुरु करें तो चूल्ही के विभिन्न भाग कई नामों से जाने जाते हैं। मसलन, स्तंभ (शाफ्ट), उदर (बेली), कमर (बोश) एवं हार्थ। चित्र–7 में धमन भट्टी की रचना दर्शाई गई है। चूल्ही के ऊपरी हिस्से में लोह अयस्क, कोक, गालक, सिंटर इत्यादि माल बोझाई कराने का कार्य करते हैं तथा इसमें गैस निकलने के पाइप की व्यवस्था होती है। यहाँ घंटे के आकार के दो यंत्र होते हैं – एक छोटा और एक बड़ा। जरूरत मुताबिक दोनों को घुमाया जा सकता है। इनकी मदद से कच्चा माल भट्टी में जहाँ आवश्यकता हो वहाँ गिराया जा सकता है। कच्चा माल अगर सही तरीके से परत दर परत सजाया जा सके तो चूल्ही अच्छी तरह चलती है। आजकल कच्चा माल उचित तरीके से डालने के लिए बहुत अच्छी व्यवस्था की जाती है। जिसे घंटा रहित बोझाई कहते हैं। चूल्ही में माल झोंकने के समय खास ध्यान दिया जाता है ताकि गैस का प्रवाह पाइप की ओर रहे और गैस अन्यत्र कहीं से बाहर न निकले। यह व्यवस्था, स्लुइस गेट या जल नियंत्रण बाल्व की तरह कारगर होती है। जो गैस भट्टी से निकलकर पाइप द्वारा बाहर आती है उसमें प्रचुर धूलकण होते हैं। इस फलू धूलि की सफाई के बाद ही गैस को काम में लाया जा सकता है।

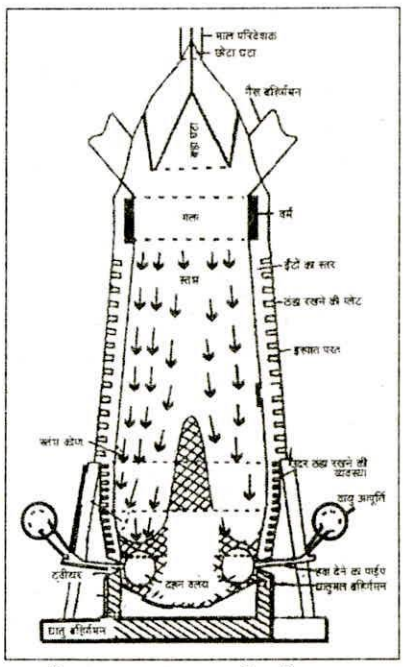

चित्र–7 : धमन भट्टी की रचना

स्तंभ का व्यास ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः बड़ा होता जाता है जिससे भट्टी के अंदर माल निर्बाध रूप से उतरता जाए, और कहीं अटके नहीं। स्तंभ की ऊँचाई चूल्ही की समग्र ऊँचाई का लगभग 3/5 होती है। इस स्तंभ का निचला भाग जिसे भट्टी का उदर कहते हैं बेलनाकार होता है। इसके नीचे बॉश होता है जो ऊपर से नीचे की तरफ क्रमशः संकरा होता चलता है। इसका कारण यह है कि इसी हिस्से में माल धीरे धीरे गलना शुरु करता है और कोक पूरी तरह जलकर राख बन जाता है तथा कार्बन मोनो तथा डाई ऑक्साइड उत्पन्न होती है। अतः यहाँ जगह कम चाहिए। बॉश से नीचे हार्थ के ऊपरी भाग में समूची भट्टी के चारों तरफ एक ही घेरे में 30–40 ट्वीयर बने होते है और इनके अंदर हमेशा जल प्रवाहित कर इन्हें ठंडा रखा जाता है ताकि ये जल न जाएं।

टूवीयर से नीचे धातुमल निकासी का रास्ता और उससे भी नीचे गले हुए लोहे को निकालने का रास्ता होता है। कई जगह धातुमल को लगातार बाहर निकलने को छोड़ दिया जाता है। अन्यथा धातुमल और धातु एक साथ निकल जाते हैं, ऊपर वाले छेद से धातुमल जो भट्टी के एक तरफ इकट्ठा किया जाता है तथा दूसरी बगल में स्थित लेडल में धातु गिरने दिया जाता है, इसे टैपिंग कहते हैं। सारा इकट्ठा हुआ धातु जब निकल आता है हार्थ लगभग खाली हो जाती है तो निकास मार्ग को बाहर से बंद कर देते हैं।

धमन भट्टी का आकार, गठन और कद अर्थात् उच्चता, व्यास, कोण इत्यादि चूल्ही प्रचालन प्रक्रम पर और कच्चा माल के हेर–फेर पर गर्म हवा के ताप आदि पर निर्भर करता है। स्तंभ, उदर और बॉश के संधि स्थल कोण महत्वपूर्ण है ताकि माल बिना बाधा के नीचे उतर सके और नीचे से गैस चौतरफा बराबर ऊपर उठ सके, तभी भट्टी सही चल सकती है। गला लोहा निकालने वाला छेद (टैप होल) हार्थ के धरातल से 50–150 सेंटी मीटर ऊपर रहता है। इसके लगभग 1 मीटर ऊपर धातुमल निकालने का छेद (स्लैग होल) रहता है। हार्थ का व्यास 10 से 15 मीटर तक होता है। बड़ी धमन भट्टियों का कार्यकारी आयतन (वर्किंग वाल्यूम) 3000 घनमीटर से 5500 घन मीटर तक होता है। इन की उत्पादन क्षमता 6000 से लेकर 11000 टन प्रतिदिन या इससे भी ज्यादा हो सकती है। कम से कम में 750 घनमीटर तक की भट्टी उपलब्ध है। आजकल हमारे देश में छोटी धमन भट्टियां बन रही हैं जिनका आयतन 75 से 350 घनमीटर तक है।

भंडारण तथा परिवहन व्यवस्था

अनेक प्रकार का कच्चामाल लोह अयस्क, सिंटर, कोक, चूना पत्थर इत्यादि गुणता के हिसाब से पूर्व निर्धारित जगह पर सुरक्षित रखा जाता है। धमन भट्टी में झोकने से पहले हर तरह से कच्चा माल वजन करके भेजा जाता है। आजकल माल भेजने का काम कन्वेयर बेल्ट द्वारा लिया जाता है तथा बड़ी बड़ी धमन भट्टियों में कम्प्यूटर द्वारा संचालित होता है। अगर कच्चे माल की प्रत्येक खेप रासायनिक विश्लेषण और मात्रा के हिसाब से अनुकूल हो तभी धमन भट्टी सही तरीके से चलाई जा सकती है।

हवा गर्म करने की चूल्ही (हॉट ब्लास्ट स्टोव)

ऑक्सीजन की सहायता से ही कार्बन–दहन संभव है। इसलिए धमन भट्टी में पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन भेजना बहुत जरूरी है। यह काम ट्वीयर के माध्यम से गर्म हवा भेजकर किया जाता है। यह हवा कम से कम 0.6 से लेकर 3.5 बार दबाव पर भेजी जाती है ताकि कच्चे माल के बीच से निकलकर गैस नीचे से ऊपर उठे और रास्ते में माल को गर्म करती चले तथा रासायनिक अभिक्रियायें भी होती रहें। भट्टी कितने दबाव पर चलाई जा रही है उस पर हवा का दबाव निर्भर करता है। भट्टी के ऊपर दबाव बढ़ाने पर उत्पादन क्षमता बढ़ती है और कोक कम लगता है। इतनी विशाल मात्रा में हवा देने के लिए टर्बाइन चालित ब्लोअर (टर्बो ब्लोअर) की जरूरत होती है। यह हवा जितनी ज्यादा गर्म भेजी जाएगी भट्टी की उत्पादन क्षमता उतनी ही बढ़ेगी और साथ साथ कोक का खर्च कम होगा। इसलिए बाहर की हवा को भट्टी में धकेलने से पहले गर्म करने की व्यवस्था की जाती है। हवा आजकल 1100–1300 डिग्री सेल्सियस तक गरम की जाती है।

हवा गर्म करने की कई विधियां हैं। इनमें सर्वाधिक प्रचलित काउपर तप्त चूल्हे हैं। यह चूल्हे भट्टी की तरह ही इस्पात की चादरों से बने होते हैं। इसकी ऊँचाई 20 मीटर से अधिक और व्यास 6.9 मीटर होता है। चादर का अंदर वाला भाग उच्चतापसह ईटों से मढ़ा रहता है। इस चूल्हे का बीच वाला हिस्सा धमन भट्टी सा खोखला नहीं रहता बल्कि उच्चतापसह ईटों की एक पर एक सतह में सजावट बनी रहती है जिससे हवा और ईटों के बीच ताप का आदान–प्रदान हो सके। यह चूल्हा पुनरुत्थान प्रक्रम पर आधारित होता है। साधारणतः एक धमन भट्टी के साथ तीन हवा गर्म करने वाले

5—302 Min. of HRD/2013

चूल्हे होते हैं। हर चूल्हे के साथ एक दहन कक्ष होता है। जहाँ धमन भट्टी से निकलने वाली गैस को जलाकर चूल्हे की ईटों (जाफरी) को गर्म किया जा सके। बाद में इन ईटों के बीच से ठंडी हवा प्रवाहित हवा को गर्म किया जा सके तब उस गर्म हवा को धमन भट्टी में धकेला जाए। जब तक एक चूल्हे की जाफरी गर्म होती रहती है। तब तक दूसरे चूल्हे (जिसके ईटें पहले ही गर्म की जा चुकी हैं) से ठंडी हवा को प्रवाहित किया जाता है। इस प्रकार घंटे–घंटे चूल्हा बदल बदल गर्म हवा की पूरी व्यवस्था की जाती है। निकलने वाली गैस का 50 प्रतिशत ही धमन भट्टी के काम में लगता है बाकी गैस कारखाने की दूसरी भट्टियों के काम आ जाती है।

गैस निकासी पाईप और गैस की सफाई

धमन भट्टी से निकलने वाली गैस अपने साथ कच्चा माल के धूलकण ले आती है मोटे तौर पर एक टन गला लोहा बनाने में तकरीबन 50–100 किलो लोह अयस्क, सिंटर, कोक, इत्यादि के धूलकण भट्टी की गैस के साथ बाहर आ जाते हैं। इन सबको गैसों से अलग कर बाद में सिंटर/गुटिका बनाने में बरत लिया जाता है। इस गैस में ज्यादा हिस्सा नाइट्रोजन (50-60%) और बाकी कार्बन डाई ऑक्साइड और ज्वलशील कार्बन मोनो ऑक्साइड बराबर अनुपात में होती है। इसके अलावा थोड़ा हाइड्रोजन तथा वाष्प भी होते हैं। हाँलाकि इस गैस का कैलोरीमान काफी कम होता है परंतु इस्पात कारखाने के लिए यह बड़े काम की होती है। कई बार कोक अवन गैस के साथ मिलाकर इसे इस्तेमाल करते हैं। परंतु मिलाने के पहले इसमें से धूलकण चक्रवात तथा अवक्षेपित्र के जरिए अलग कर दिए जाते हैं।

धमन भट्टी से निकलने वाली गैस, पहले (डस्ट कैचर) धूलि ग्राही से घुमाई जाती है जहाँ मोटे धूलकण बैठ जाते हैं। इसके बाद चक्रवात (साइक्लोन) की मदद से छोटे धूलिकण बाहर निकाल दिए जाते हैं। सबसे आखिर में गैसों को स्थिर विद्युत अवक्षेपित्र में भेजते है जिसकी की मदद से सबसे महीन धूलकण भी साफ कर लिए जाते हैं।

यह परिशोधन विधि सिर्फ धमन भट्टी से निकलने वाली गैस के लिए ही नहीं बल्कि इस्पात कारखाने में विभिन्न स्थानों पर व्यवहार होती है क्योंकि पर्यावरण स्वच्छ रखने के लिए और कोई विकल्प नहीं है। धमन भट्टी से गलित लोहा ढलाई शाला में, कच्चा माल मिश्रण करने वाली जगह तथा अन्य जगहों पर जहाँ हवा में धूलकण अधिक हो, यह विधि काम में लाई जाती है।

धमन भट्टी में रासायनिक अभिक्रियाएं

धमन भट्टी में कच्चा माल लोह अयस्क, कोक, सिंटर, गुटिका, गालक पूर्व निर्धारित वजन तथा अनुपात में झोंका जाता है। मुख्य उद्देश्य होता है गैस को माल के बीच से गुजारना। ट्वीयर के रास्ते गर्म हवा भेजी जाती है, जिससे कोक पूरी तरह जल जाए और अपचयन के लिए उपयोगी गैस बनाये तथा ताप उत्पन्न करे। कोक की खपत कम हो, इसके लिए ट्वीयर के रास्ते कोयला, ऑक्सीजन, खनिज, तेल, प्राकृतिक गैस इत्यादि व्यवहार करने का प्रचलन कई जगह है। धमन भट्टी में कोक मुख्यः तीन काम करता है –

1. ईंधन होने के नाते जरूरी ताप पैदा करता है।
2. लोह अयस्क से संयुक्त ऑक्सीजन को बाहर निकालता है।
3. गलित लोहे में कार्बन घोलता है।

कोक का काफी हिस्सा–भट्टी के निचले भाग तक टिका रहता है, इसलिए इस कोक का भट्टी में भरे माल का वजन भी सहना पड़ता है। कोक से अल्पांश लोहे में जाने से उसका गलनांक कम हो जाता है। अतः जहाँ कोक जलता है, उसके ऊपर और नीचे आने जाने का रास्ता सुगम होता है। गैस ऊपर की ओर बढ़ती है और गलता हुआ लोहा बूँद–बूँद कोक की सतहों में छिद्रों से पार होता नीचे हार्थ में जमा होने लगता है। धमन भट्टी की एक और विशेषता यह है कि कच्चे माल में जो अवांछनीय तत्व है वे गालक के साथ रासायनिक अभिक्रियाएं कर कुल धातुमल में तब्दील होने लगते हैं और तरल लोहे से हल्का होने के कारण उस पर तैरने लगते हैं। लोहे और धातुमल का आपेक्षिक घनत्व अलग होने की वजह से धातुमल सहज ही तरल लोहे से अलग तौर से बाहर कर दिया जाता है।

धमन भट्टी में कई जटिल रासायनिक अभिक्रियायें होती हैं। भट्टी के अंदर कच्चा माल और गैस की गति, आमने सामने अथवा विपरीत होती है। प्रवाह होने की वजह से ये अभिक्रियाएं अच्छी तरह हो सकती हैं। एक तरफ जिस प्रकार गर्म गैस भट्टी स्तंभ के भीतर पहुँच कर ऊपर की ओर उठती है उसी प्रकार धान भार धीरे–धीरे नीचे उतरता गर्म होता चलता है और ट्वीयर के नजदीक पहुँच कर गलने लगता है। धातुकर्म की दृष्टि से यह विपरीत गति की प्रणाली खास सुविधाजनक है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धमन भट्टी में होने वाली अभिक्रियाओं में साम्य बनाये रखने के लिए आवश्यक चरण निम्नलिखित है :–

क. कोक का दहन

ख. गैस का गठन तथा पुनर्गठन

ग. लोह अयस्क का अपचयन

घ. धातुमल को बनाने वाली अभिक्रियाएं

धमन भट्टी कार्य प्रणाली की रूपरेखा

गर्म हवा ट्वीयर से होती भट्टी में घुसते ही कोक का जलना शुरु हो जाता है, और कार्बन डाईऑक्साइड बनती है। जिससे प्रचुर ज्वाला पैदा होती है और ताप 1800–2000 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। कार्बन की मौजूदगी में यह ताप कार्बन डाईऑक्साइड को अपघटित कर कार्बन मोनॉक्साइड में तब्दील कर देता है –

$$CO_2 + C = 2CO$$

इसलिए ट्वीयर अंचल में सिर्फ कार्बन मोनोऑक्साइड तथा नाइट्रोजन मिलता है। यह ऑक्सीजन को खींच लेने वाली गैस, कोक की सतहों से ऊपर उठती बॉश, उदर और स्तंभ अंचलों में व्याप्त होकर लोह अयस्क का अपचयन करती है।

धमन भट्टी के निचले आधे हिस्से में गला लोहा, तरल धातुमल, सख्त कोक, सख्त अयस्क तथा गैस रहते हैं। उल्टे Y के आकार में संयोगशील वलय बन जाता है। इस वलय में लोहा और धातुमल मिश्रित दुर्मेद्य स्तर और उसके बीच बीच में कोक स्तर रहता है। ट्वीयर अंचल से गैस ऊपर उठती है और कोक की सतहों से गुजरती है। ट्वीयर के बिल्कुल नीचे ही दिखता है तरल धातुमल और कोक स्तर के ऊपर तैरते कोक टुकड़े जिसके नीचे तरल लोहे की सतह (कोक कणों से मिश्रित) होती है।

आप ने पहले देखा था कि लोह अयस्क तीन तरह का होता है – हेमाटाईट (Fe_2O_3), मैग्नेटाइट (Fe_3O_4), तथा वुस्टाईट (FeO)। लोहे के साथ ऑक्सीजन का आबंध एक बार में ही नहीं टूटता, बल्कि धीरे धीरे कई चरणों में अपघटित होकर शुद्ध लोहा (Fe), प्राप्त होता है –

(1) $3Fe_2O_3+CO=2Fe_3O_4+CO$

(2) $Fe_3O_4+CO=3FeO+CO_2$

(3) $FeO+CO=Fe+CO_2$

यह पूरी अभिक्रिया CO तथा CO_2 के अनुपात पर निर्भर करती है। हम लोगों ने पहले देखा कि धमन भट्टी विपरीत गति की प्रणाली पर काम करती है तथा ट्वीयर के हिस्से में कोक के साथ हवा के संयोग से जो गैस बनती है वह लगभग CO (कार्बन मोनोक्साइड) तथा N_2 (नाइट्रोजन) होती है। यह मिश्रण ऑक्सीजन के अपचयन के लिए बहुत ही सक्षम है। FeO के संपर्क में आते ही उपर्युक्त अभिक्रिया शुरु हो जाती है एवं उपेक्षाकृत कम शक्ति वाला CO_2 बनने लगता है जो ऊपर उठकर हेमाटाइट एवं मैग्नेटाइट के संपर्क में आता है। जब CO की मात्रा कम होने लगती है (अर्थात CO-CO_2 का अनुपात कम होने लगता है) तो कम शक्ति वाली CO गैस, कम ऑक्सीजन युक्त लोह अयस्क का अपचयन करने में सक्षम होती है (अभिक्रिया : 1 या 2 के अनुसार)।

धमन भट्टी के प्रचालन में आने वाली समस्याएं तथा उनका निराकरण

धमन भट्टी कैसी चल रही है यह आँखों से देखा नहीं जा सकता। आजकल अनेक प्रकार के उपकरणों की सहायता से भरोसेमंद अनुमान लगाया जा सकता है। साधारणतः इन यंत्रों की मदद से भट्टी का ताप, दाब तथा गैसों की रासायनिक स्थिति आदि की जानकारी मिलती है तथा इनसे भट्टी की हालत का पता चल जाता है। भट्टी में किस प्रकार की कठिनाइयाँ आ सकती हैं तथा उनका मुकाबला किस तरह करें ताकि धमन भट्टी को सुचारु रूप से चलाया जा सके, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :–

(क) चैनलन (गड्ढ़ा या नाली बनना)

हम लोगों ने देखा था कि विभिन्न प्रकार और विभिन्न घनत्व वाला कच्चा माल भट्टी में झोंका जाता है। इनमें अगर धूलि कणों का हिस्सा अधिक हो जाए तो गैस के आने में बाधा पड़ने लगती है। फलस्वरूप भट्टी के अंदर गैस समान रूप से व्याप्त नहीं हा पाती और न ही समान रूप से वह प्रवाहित होती है जिससे माल की अंदर गैस का संपर्क भी कम हो जाता है। जहाँ गैस का प्रवाह अधिक है वहाँ धूलकण गैस

के साथ ही ऊपर उठ जाते हैं तथा उस अंचल में स्थिति असंतुलित हो जाती है। इस तरह धूलिकणों के खाली हो जाने से वहाँ घान भार में एक तरह का गड्ढ़ा या नाला बन जाता है जिसके भीतर से गैस अति सहज तरीके से बाहर निकल जाती है फलतः अपयचन पूरा नहीं हो पाता। देखा गया है कि इस तरह नाली का बनना ओर उसमें होकर गैस का प्रवाहित होना। चूरा माल और भट्टी के अंदर वायु के प्रवाह पर निर्भर करता है।

चैनलन का पूर्वाभास कई तरह से मिलने लगता है :–

- बाहर निकलने वाले गैसों का ताप बढ़ जाता है।
- नाली के आसपास का ताप थर्मो–विज़न कैमरा से जानना संभव है।
- निकलने वाली गैसों में कार्बन–डाई–ऑक्साइड की मात्रा कम हो जाती है (मतलब उपचयन कम हो रहा है)
- नाली के नजदीक ट्वीयर में हवा की गति बढ़ जाती है।
- निकलने वाली गैस में धूल की मात्रा बढ़ जाती है।
- जब बड़ा घंटा उतरकर नीचे आता है तो गैस के दबाव में भारी अंतर दिखता है। इस हालत का समाधान है।
- घान भराई करते समय सतर्कता एवं निरंतरता बनाए रखना।

घान भार के क्रम में अच्छी तरह सोचकर परिवर्तन लाना अथवा गैस का प्रवाह घटा–बढ़ाकर ट्वीटर में हवा का दबाव कम करना तथा हवा की आर्द्रता बढ़ाना।

(ख) स्कैफोल्डन (मंच बनना)

भट्टी के अंदर माल के ऊपर से नीचे खिसकने में अगर कोई बाधा आती है तो प्रचालन में गड़बड़ी शुरु होती है। भट्टी के अंदर उच्चतापसह ईटों के साथ प्रायः थोड़ा–थोड़ा माल चिपकता जाता है तथा क्रमशः माल सीधे न खिसक कर भट्टी के केंद्र की तरफ खिसकता रहता है।

कभी कभी ईटों के साथ जमा होते–होते माल चारो तरफ से इतना करीब आ जाता है मानो मंच बन गया हो। भट्टी के किसी भी भाग में ऐसा हो सकता है। ऊपर वाले हिस्से में जहाँ माल अभी सख्त होता है, ऐसी हालत को स्कैफोल्ज़ कहते हैं। जिस

हिस्से में माल नरम होकर गलना शुरु करता है वहाँ ऐसी हालत बनने पर उसे स्कैब कहते हैं। पाया गया है कि यदि पोटैशियम, सोडियम जैसे क्षारीय पदार्थ अथवा जिंक, लेड जैसे धातु पदार्थ अयस्क अथवा सिंटर की धूल कणों में शामिल हों तो भट्टी के अंदर ईटों पर झट से जमा होने लगते हैं। मंच बनने में इनसे मदद मिलती है।

मंच बनने का पता नीचे लिखी बातों से चल जाता है :–

- निकलने वाली गैसों का दबाव प्रायः दुगुना हो जाता है।
- निकलने वाली गैसों का ताप बढ़ जाता है।
- आसपास की दीवाल का ताप कम हो जाता है जो भट्टी के बाहर से पता चल जाता है।
- निर्गत गैसों में CO/CO_2 का अनुपात बढ़ जाता है।
- माल ठीक से नहीं उतरता।

स्कैफोल्डन पर काबू पाने के लिए कच्चे माल की गुणता तथा ठीक–ठीक घान भार पर ध्यान देना पड़ता है :–

- हर प्रकार के माल में क्षार तथा जस्ता कम से कम हो।
- कम गलनांक वाला अयस्क एवं अधिक धूल वाला माल न प्रयोग किया जाए।
- सिंटर अच्छी तरह छान लिया जाए ताकि चूरा कम जाए।
- बौश ढालू बनाया जाए ताकि माल उतरने में दिक्कत न आए।
- उच्चताप सह ईटों में छिद्र अधिक न हों। अधिक घनत्ववाली ईटों में क्षार, धूल, जिंक इत्यादि जल्दी जमा नहीं हो पाते। इसलिए आजकल अधिक ऐलुमिना युक्त ईंटें व्यवहार में लाई जाती हैं।
- ट्वीयर से हवा का दाब तथा गति इस तरह नियंत्रित की जाती है कि भट्टी की परिधि में गैस का प्रवाह सुचारु बना रहे।

मंच बन जाने पर उसे बारूद से उड़ाया जाता है अथवा उसे गला देना पड़ता है। आजकल जरूरत के मुताबिक कैल्सियम क्लोराइड से भी मंचतोड़ा जाता है लेकिन उससे पहले मंच का रासायनिक संघटन तथा स्थान अच्छी तरह जानना जरूरी होता है।

(ग) स्कैब

भट्टी के निचले भाग में जहाँ धातुमल बनता है, वहाँ अगर किसी वजह से ठीक तरह धातुमल न बन पाए तो मचान जैसा बन जाता है। देखने में यह किसी घाव पर जमी पपड़ी जैसा लगता है इसलिए स्कैब कहते हैं। इसके कारण माल नीचे नहीं घसकता और गैस अपने रास्ते के लिए नाली बना लेती है, जिसके फलस्वरूप :–

- ट्वीयर के आस–पास ताप बढ़ जाता है और वायु की आर्द्रता कम हो जाती है।
- धातुमल का रासायनिक संघटन तथा स्वरूप बदल जाता है। हवा ठीक तरह से प्रसारित न होने पर धातुमल भट्टी से चिपका रहता है अर्थात् इसकी तरलता कम हो जाती है।

इस अवस्था पर काबू पाने के लिए कुछ उपाय करने पड़ते हैं, उदाहरणार्थ;

- बोझ में कोक की मात्रा बढ़ा दी जाती है।
- अगर शक हो कि दोनों सिरों से मचान जुड़ जाने से पुल जैसा बन गया है तो ट्वीयर से हवा का ताप और दाब दोनों कम कर दिए जाते हैं।
- बोझाई किये जाने वाले माल के मिश्रण में परिवर्तन किया जाता है, यह ख्याल रखते हुए कि चूना पत्थर भट्टी के किनारे–किनारे कम पड़े।
- यदि भट्टी ठीक तरीके फिर भी नहीं चलती तो दीवाल साफ करने के लिए माल के साथ सख्त सिंटर तथा रद्दी लोहा डाला जाता है।

(घ) निलंवन प्रभाव (माल झूल जाना) (Suspension effect)

हम लोगों ने देखा कि कई कारणों से झोंका गया माल भट्टी में ठीक तरह से नीचे उतरने में बाधा पाता है, जैसे कि

- मचान या पपड़ी का बन जाना।
- माल में ज्यादा धूल या चूरा होने पर ऊपर वाली गैसों के दबाव का बढ़ जाना।
- कोक की सतहों में गला हुआ धातु तथा धातुमल का अटक जाना।

निलंबन दोष दो तरह का हो सकता है। गर्म यानी भट्टी के गर्म भागों में तथा ठंडा यानि अपेक्षाकृत ठंडे भागों में। ट्वीयर का ताप अधिक होने पर गर्म निलंबन दोष पड़ सकता है जो ट्वीयर में हवा का ताप और दाब कम करने पर ठीक हो जाता है। ठंडा निलंबन दोष तब होता है जब बॉश के नजदीक एवं कोक जाफरी के मुँह पर पूरा धातुमल भर जाता है और उसका प्रवाह बाधित हो जाता है। ऐसी हालत में बॉश के निकट स्थित कूलिंग प्लेट बदल दी जाती है तथा अयस्क और कोक का अनुपात भी आवश्यकतानुसार बदल दिया जाता है। किंतु वांछित परिणाम प्राप्त होने में 6 से 8 घंटे लग जाते हैं। इस बीच ट्वीयर का ताप बढ़ाना पड़ता है।

(ड़) घान भार सर्पण

भट्टी के अंदर झोंका गया माल यदि अचानक तेजी से उतरने लगे तो उसे सर्पण या फिसलना कहते हैं। ऐसा तब होता है जब निचले भाग में माल का प्रवाह ठीक होता है या ऊपर का माल किसी वजह से कहीं अटका होता है, जिससे बीच का हिस्सा कहीं खोखला या खाली हो जाता है। ऐसी अवस्था में ऊपर वाले भाग में माल इकट्ठा होते होने पूरे वजन से अचानक नीचे गिर पड़ता है। तब भीषण विस्फोट की भी आशंका रहती है। ऐसा भी हो सकता है कि भट्टी का ऊपर वाला भाग क्षतिग्रस्त हो जाए और धमन भट्टी का प्रचालन ठप्प करना पड़े। चैनलन एवं मचान बनने से भी ऐसी फिसलन हो सकती है।

(च) हार्थ–अवरोध

तरल धातु और धातुमल कोक जाफरी से होकर नीचे न आ पाए तो वह भट्टी के चारो ओर जमना शुरू हो जाता हैं। इस अवस्था को हार्थ – अवरोध कहा जाता है। इसके कई कारण हैं, यथा धातुमल का बहुत धना होना जिससे उसका प्रवाह मंद हो जाता है।

- भट्टी में छोटे और नरम कोक का प्रयोग
- माल में चूना पत्थर और सिंटर के छोटे टुकड़ों की अधिकता

ऐसी अवस्था में भट्टी काम नहीं कर पाती एवं उत्पादन बंद होने लगता है।

इसका इलाज है – मुख्य रूप से कोक की गुणता बढ़ाई जाए। कोक इतना मजबूत हो कि जल्दी टूटे नहीं, नहीं तो ट्वीयर जलने की भी आशंका बनी रहती है।

- माल में क्षारीयतत्वों की मात्रा कम की जाए
- गर्म हवा का ताप कम किया जाए
- कोक ज्यादा झोंका न जाए

हार्थ का जमना

जब भट्टी में गले हुए लोहे का ताप बहुत घट जाता है तो उसे ठंडी भट्टी कहा जाता है। यह अवस्था पहुँच सकती है अगर;

1. ऊपर से ठंडा माल फिसल पड़े;
2. भट्टी के चारों तरफ से माल केंद्र की तरफ बीच में जोर से फिसलता रहे;
3. लोह अयस्क एवं गैस का अनुपात बार–बार बदलता रहे;
4. कोक में कार्बन कम हो (जो कि हमारे देश की धमन–भट्टियों में अक्सर होता है।

इस अवस्था को रोकने के लिए –

1. पहले बताई बाधाओं मसलन स्कैफोल्डन, चैनलन, स्कैब, फिसलन, अवलंबन – दोष आदि न होने की निगरानी रखी जाए;
2. घान माल में जस्ता तथा क्षार कम किए जाए;
3. गैस का प्रवाह समान रखा जाए;

ट्वीयर जलना

ट्वीयर के जलने का प्रधान कारण है (क) बॉश का बंद होना एवं 1. बॉश में कोक के टुकड़ों की जगह बारीक कोक कणों का जम जाना। इस पर काबू पाने के लिए निगरानी रखनी होगी ताकि –

1. बॉश और हार्थ स्थल पर धातुमल तरल एवं सहज वह सके।
2. घान भार में क्षारीय तत्व एवं जस्ता नियंत्रित मात्रा में रहें।
3. कोक की मजबूती कम न हो जिससे जल्दी टूट कर चूरा न बने।
4. चैनलन का निर्माण न हो।

कोक का गड़बड़ होना

कभी कभी धातुमल के साथ अचानक कोक निकलने पर भट्टी का प्रचालन बड़ा मुश्किल हो जाता है। ऐसी हालत तब होती है अगर –

1. कोक टूट कर चूरा हो जाए और धातुमल के साथ मिल जाए और उसके प्रवाह में विघ्न डाले। ऐसी हालत में धातुमल ही नहीं अचानक गले लोहे के साथ किश्तों में कोक बाहर निकल सकता है।
2. कोक अच्छा होते हुए भी गड़बड़ हो सकती है अगर भट्टी ढंग से चलाई न जाए। जैसे कि ट्वीयर से ठीक वायु न भेजी जाए तो रेसवे नष्ट हो सकता है जिससे कोक के जलने में बाधा आती है। भट्टी ठीक चले तो रेसवे में ही सारा कोक प्रयोग में आ जाता है। कोक की गड़बड़ी ठीक करने के लिए

   क) अच्छे कोक का प्रयोग किया जाए

   ख) ट्वीयर में हवा समान रूप से, समान दाब पर भेजी जाए।

धमन भट्टी की उत्पादकता

लोहा गलाने के इतिहास पर नजर डालें तो हमें पता चलता है कि 1860 से लेकर आज तक क्रमशः धमन भट्टी की प्रयोग विधा में काफी उन्नति हुई है। भट्टी का व्यास 1 मीटर से 15 मीटर हो गया है। फलतः उत्पादन क्षमता भी 25 टन रोज़ाना से बढ़कर लगभग 14000 टन तक पहुँच गई है। अंदर का व्यास बढ़ाने के साथ–साथ भट्टी की ऊँचाई और अंदर का आयतन भी बढ़ाया गया है। आज दुनिया की सबसे बड़ी धमन भट्टी का कार्यकारी आयतन 5500 घनमीटर और दैनिक उत्पादन क्षमता 14000 टन है। इससे बड़ी धमन भट्टी का प्रचालन आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद नहीं पाया गया। इसीलिए इससे बड़ी भट्टी बनाने का ख्याल छोड़ दिया गया। अब सबसे बड़ी समस्या है भट्टी के अंदर गैस की गतिविधि का पूर्ण ज्ञान एवं सही प्रचालन। साधारणतः प्रयुक्त तकनीक में उन्नति का अर्थ उत्पादन क्षमता में वृद्धि से लगाया जाता है और उत्पादन – लक्ष्य प्राप्त करना ही इस्पात उद्योग की सफलता समझा जाता है। परंतु उत्पादन क्षमता के साथ–साथ उत्पादन शीलता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। भट्टी की अधिकाधिक क्षमता का सदुपयोग भी जरूरी है। इसके साथ ही अपनाई जाने वाली तकनीक लाभजनक है अथवा नहीं इसका विचार भी करना होगा। उत्पादन शीलता बढ़ने का मजा तब ही है जब लाभ बढ़े।

उत्पादकता की व्याख्या

उत्पाकता को सभी दृष्टिकोणों से जाँचने के लिए कुछ आँकड़ों पर विचार करना होगा :–

1. कच्चे माल की उत्पादकता (Productivity of Raw Materials)
2. प्रयुक्त विधि एवं उत्पादक उपस्करों की उत्पादकता (Productivity of the Process Technology and Equipment)
3. लगाई गई पूँजी की उत्पादकता (Productivity of Invested Capital)
4. श्रम – उत्पादकता (Productivity of Labour)

उत्पन्न वस्तु के प्रत्येक टन के लिए विभिन्न घटकों की कितनी मात्रा की खपत होती है एक अत्यावश्यक मानदण्ड है। लोहे के संदर्भ में एक टन गला लोहा बनाने के लिए कौन–सा कच्चा माल कितना चाहिए (जो निर्भर करता है कच्चा माल की गुणता, उत्पादन विधि और यंत्रों की हालत पर), कितनी पूँजी लगी है, कितना समय और कितनी जनशक्ति लगी है आदि का हिसाब–किताब रखना होगा। सबको मिलाकर ही उत्पादकता का निर्णय किया जाता है।

उत्पादकता की इकाई

इकाई उत्पादन के लिए प्रत्येक घटक की कितनी मात्रा खर्च होती है वह विशिष्ट खपत (Specific Consumption) की इकाई कहलाती है। गणित की भाषा में कहें तो प्रयुक्त माल का उत्पन्न माल से अनुपात (Out put/in put)। एक टन गलित लोहा पाने के लिए अगर डेढ़ टन का जुगाड़ देना पड़े तो विशिष्ट खपत हुई 1.5 किलो प्रति गलित लोहा तथा उत्पादन शक्ति हुई 0.66 अथवा 66 प्रतिशत (1 / 1.5)

धमन भट्टी की उत्पादकता

अब धमन भट्टी की उत्पादकता पर विचार किया करते हैं। यहाँ थोड़ा विशद व्याख्या की जरूरत है क्योंकि हम घटक की उत्पादकता नहीं बल्कि पूरी भट्टी की उत्पादकता पर विचार कर रहे हैं। इसके पहले हमने भट्टी से उत्पादन बढ़ाने पर विस्तृत चर्चा की है – लोह–अयस्क की प्रस्तुति, सिंटर का प्रयोग, अच्छे कोक की उपयोगिता, चूना पत्थर तथा गालकों आदि का उपयोग, कच्चे माल की अधिकाधिक

समरूपता सम–आयतन एवं रासायनिक समतुल्यता आदि ध्यान का रखते हुए भट्टी के अंदर इस प्रकार घान डालना जिससे गैस, बिना बाधा के ऊपर उठती जाए इत्यादि परंतु इन सबका मुख्य उद्देश्य क्या है? लोह अयस्क को पूर्ण ऑक्सीजन मुक्त बनाकर शुद्ध तरल लोहे में परिणत कर देना। एकमात्र कोक की सहायता से यह संभव होता है। कोक का कार्बन ट्वीयर की गर्म हवा के संपर्क में जलना शुरु करता है, प्रधान रासायनिक अभिक्रियाएं संपन्न होती हैं और अन्ततः तरल धातुमल तथा लोहा दो सतहों में पृथक हो जाते हैं। इस तरह देखा जाए तो धमन–भट्टी में लोह उत्पादन के कार्य में दो प्रधानताएं हैं– पहला कोक ओर दूसरी गर्म हवा। किसी धमन भट्टी की उत्पादकता का निर्णय करने के लिए जानना होता है कि निर्दिष्ट समय में कितना कोक जलाकर कितना तरल लोहा बना। उससे पता चलेगा प्रति टन गले लोहे के लिए कितना कोक प्रयोग हुआ है। इसे कहा जाता है कि कोक की ज्वलन दर अथवा कोक दर (कोक दहन की दर) जिसे साधारणतः Kg/ton से व्यक्त किया जाता है। सारा दिन कोक का कितना बोझा डाला गया अथवा दग्ध हुआ यदि पता हो, तो कोक दर के हिसाब से लोह उत्पादन का मोटे तौर पर सही अनुमान लगाया जा सकता है। अतः धमन भट्टी की उत्पादकता के लिए सरल समीकरण लिखा जा सकता है :– P=Q/K जहाँ P=उत्पादकता, Q=कुछ कोक खपत एवं K=कोक दर। धमन भट्टी में कच्चे माल (लोह अयस्क) को ऊपर से नीचे गलकर हार्थ तक पहुँचते प्रायः 6 से 8 घंटे लग जाते हैं। Q अथवा कोक की खपत रोज़ाना हिसाब से ली जाती है और भट्टी की उत्पादकता भी दिन भर में कितना टन लोहा पिघला के हिसाब से ली जाती है। समीकरण से साफ है कि एक दिन में जितने ज्यादा कोक की खपत होगी और कोक दर जितनी कम से कम होगी, उत्पादकता उतनी ही अधिक होगी। अतः उत्पादकता बढ़ाने के लिए इन दोनों पक्षों पर ध्यान देना होगा।

धमन भट्टी की उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

धमन भट्टी की अंतर्निहित एवं संभव उत्पादकता क्षमता का पूरा–पूरा फायदा उठाना ही भट्टी चलाने का मुख्य उद्देश्य होता है। अब तक हमने धमन भट्टी प्रचालन के विषय में जो भी सीखा है उसको उत्पादकता के हिसाब से चित्र – 14 में दिखाया गया है। इस चित्र के ऊपरी भाग में दिखाया गया है कि किस–

किस उपाय से कोक ज्यादा जलाया जा सकता है ताकि दिन के अंत में गलित लोहे का उत्पादन बढ़ जाए एवं कोक खपत कम हो जाए। कोक दर कम करने के तीन उपाय हैं :–

के–1 भट्टी में अतिरिक्त ईधन भेजना (Fuel injection)

के–2 परोक्ष अपचयन अधिक करना (Increased Indirect Reduction)

के–3 ताप की आवश्यकता कम करना (Decreased Thermal Load)

के–1 के लिए जरूरी है :– प्राकृतिक गैस, खनिज तेल और भाप इत्यादि को गर्म हवा के साथ ट्वीयर के रास्ते भेजना।

के–2 के लिए उपाय है :– 1. गालक सिंटर/गुटिकाकादि का प्रयोग 2. गैस एवं कच्चा माल का अधिकाधिक संपर्क 3. हाइड्रोजन–धारी वस्तुओं का प्रयोग।

के–3 के लिए जरूरी है :– 1. शुरु से ही कच्चे माल और गालक का मिश्रण 2. कच्चे माल का शोधन ताकि अवांछित घटक पहले ही अलग कर दिए जाएं 3. गर्म हवा के ताप में वृद्धि।

इन सभी प्रक्रियाओं के लिए जरूरी है माल झोंकने से पहले ही उसकी सम्यक तैयारी कर ली जाए जैसे कि माल को सम–आयतन बनाना, पिंडीकरण, सभी माल को अच्छी तरह मिलाना आदि।

कोक दहन की मात्रा में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि :–

क्यू–1 ईंधन अतः क्षेपण का प्रयोग (Fuel injection)

क्यू–2 गर्म हवा में अतिरिक्त व्यवस्था करना मसलन 1. वायु प्रवाह में अतिरिक्त ऑक्सीजन भेजना 2. वायु प्रवाह में आर्द्रता रखना 3. वायु प्रवाह का परिमाण बढ़ाना अर्थात माल की भेद्यता बढ़ाना तथा ऊपर से गैस का दबाव बढ़ाना। माल की भेद्यता बढ़ाने का मतलब है कोक की मजबूती बढ़ाना एवं माल की उचित प्रस्तुति। इस तरफ से भी बात, माल की प्रस्तुति पर आ टिकती है। मसलन आयतन समरूप रखना, शोधन करना ताकि धातुमल कम एवं तरल हो, पिंडीकरण करना ताकि अयस्क की शक्ति बढ़े। धातुमल का आयतन कम करने के और भी उपाय हैं। जिन्हें नीचे चित्र 8 में दिखाया गया है।

धमन भट्टी प्रणाली की नियंत्रण पद्धति

धमन भट्टी प्रणाली को पूरी तरह नियंत्रण और अनुकूल अवस्था में रखने के लिए भट्टी में होने वाली जटिल प्राकृतिक और रासायनिक अभिक्रियाओं की सटीक कार्यसूची बनाकर प्रयोग करना होगा। ऐसा करने के लिए पहले से ही प्रयुक्त कार्यों के साथ सभी तथ्यों का संग्रह कर समस्या के समाधान के उद्देश्य से उनका विश्लेषण करना होगा एवम् तदनुसार उपयुक्त कार्य सूची का निर्धारण करना होगा। इसके बाद व्यापक रूप से नियंत्रण प्रणालियों को क्रमबद्ध करना होगा। धमन भट्टी के ऊपरी तथा निचले हिस्सों में नाना नियंत्रण प्रणालियों में प्रयुक्त उपकरणों को एक सूत्र में बांधना होगा। इस उन्नत प्रकार की नियंत्रण व्यवस्था के फलस्वरूप भट्टी का उत्पादन बढ़ेगा, कच्चा माल कम लगेगा एवं तरल लोहे की गुणता में भी सुधार होगा। सबसे बड़ा लाभ होगा ईंधन पर कम खर्च।

धमन भट्टी से हम लोगों को क्या–क्या मिलता है?

मुख्य उत्पादन के रूप में हमें गलित लोहा मिलता है ओर उसके साथ आता है धातुमल, निकलने वाली गैसे, चिमनी के धूलकण इत्यादि। गलित लोहे में चार प्रतिशत कार्बन, सल्फर, सिलिकन, मैंगनीज इत्यादि होते हैं। लोहे में इन सब की उपस्थिति जितनी कम होगी, इस्पात उत्पादन में उतनी ही सुविधा होगी।

यह गलित लोहा प्रधानतः दो तरह का होता है –

क. इस्पात बनाने के लिए लोहे में सल्फर और फास्फोरस कम से कम रखना जरूरी होता है।

ख. ढलाई के लिए जो लोहा बरता जाता है उसमें सिलिकन और फास्फोरस जरूरत के मुताबिक अधिक रखा जाता है। इस्पात बनाने के लिए गलित लोहा ज्यादातर सीधा इस्पात भट्टी में भेजा जाता है और ढलाई के लिए लोहा पहले एक गतिमान मशीन में ढाल कर पिंड के आकार में सख्त लोहे में परिवर्तित कर लिया जाता है। जिसे कच्चा लोहा (pig iron) कहते हैं।

लोह अयस्क से प्राप्त आवांछित पदार्थ के संयोग से धातुमल बनता है। अच्छी प्रकार लोहा तैयार करने पर प्रतिटन तरल लोहे के साथ धमन भट्टी से 300 से 400

किलो तक धातुमल बनता है यह धातुमल ज्यादातर कैल्सियम ऑक्साइड, सिलिका और ऐलुमिना होता है। इसके साथ थोड़ा मैगनीज़ ऑक्साइड और मैग्नीशियम ऑक्साइड भी होता है। इस धातुमल को फेंका नहीं जाता बल्कि कई कामों में लगाया जाता है जैसे कि :–

- लगभग 60 प्रतिशत रास्ते बनाने में काम आता है।
- लगभग 20 प्रतिशत सीमेंट बनाने में प्रयोग होता है।
- बाकि बचे का slag wool, slag brick, foam slag इत्यादि बनाने के काम में लगाया जाता है।

तरल लोहा बनाने की अन्य विधियाँ

धमन भट्टी ही लोह अयस्क से व्यवहारिक लोहा तैयार करने की मुख्य पद्धति मानी जाती है। परन्तु आज कल अन्य उपायों से भी लोहा बनाने की कोशिश जारी है। धमन भट्टी की पद्धति में होने वाली असुविधाएं निम्नलिखित हैं :–

- भट्टी में व्यवहार करने लायक कच्चा माल बड़े एवं मजबूत ढेलो के आकार में होना चाहिए।
- भट्टी में डालने के लिए सारा कच्चा माल (लोह अयस्क, कोक, चूना इत्यादि) भट्टी के उपयोग योग्य किसी पूर्व पद्धति द्वारा बनाया जाता है। जैसे कि कोयले से कोक, महीन अयस्क से सिंटर अथवा गुटिका जिनके लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है।
- ऊर्जा की अत्यधिक खपत होने की वजह से उत्पादन खर्च बहुत बढ़ जाता है।
- पर्यावरण दूषित होता है जिससे बचने के लिए काफी खर्चीली व्यवस्था करनी पड़ती है।

प्रत्यक्ष ऑक्सीजन वियोजन विधि

मोटे तौर पर सारी प्रत्यक्ष ऑक्सीजन वियोजन विधियाँ एक ही सूत्र पर काम करती हैं। लोह अयस्क से उसका ऑक्सीजन, कार्बन अथवा किसी अन्य वियोजन गैस की सहायता से बाहर कर दिया जाता है। ऑक्सीजन निकलने के बाद लोह अयस्क के सख्त

टुकड़े स्पंज की तरह छिद्र मय हो जाते हैं। एवं अयस्क में मौलिक लोहा (Fe) 85 से 95 प्रतिशत तक हो जाता है। इस पद्धति को मुख्यतः दो भागों में बांटा जाता है;

क. गैस आधारित;

ख. कोयला आधारित;

दुनिया में 90 प्रतिशत स्पंज लोहा गैस आधारित होता है इसके लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक पात्र उपयोग में आते हैं :–

क. शैफ्ट भट्टी (Shaft furnace)

ख. घूर्णी भट्टी

ग. तरलित संस्टैर भट्टी (Fluidised bed furnace)

घ. घूर्णी युक्ति

गैस आधारित भट्टी में साधारणतः प्राकृतिक गैस का इस्तेमाल किया जाता है। इस गैस में नाना स्तर के हाइड्रोकार्बन होते हैं। ऑक्सीजन वियोजन का प्रयोग करने से पहले प्राकृतिक गैस को नया रूप दिया जाता है, जिससे कार्बन मोनोऑक्साइड एवं हाइड्रोजन का अंश बढ़ जाता है। दूसरी गैसें भी व्यवहार में आती है जैसे कोयले से बनने वाली कोल गैस, कोक अवन से बनने वाली गैस इत्यादि। गैस आधारित शैफ्ट भट्टी कई किस्मों में मिलती है। जिसमें मिड्रिक्स एवं हाइल पद्धतियां अधिक प्रचलित है।

इस प्रणाली में ऑक्सीजन वियोजन का माध्यम कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोजन अथवा दोनों का मिश्रण होता है। प्राकृतिक गैस के पुर्नःगठन की प्रक्रिया निम्नलिखित रासायनिक समीकरण के अनुसार होती है जिसके फलस्वरूप कार्बन मोनोऑक्साइड और हाइड्रोजन की प्रधानता बढ़ जाती है।

1. $CH_4+CO_2 = 2CO+2H_2$
2. $CH_4+H_2O = CO+3H_2$

भट्टी से निकलने वाली गैस को सल्फर के द्वारा साफ किया जाता है। गैस में जो कार्बन मोनोआक्साइड और हाइड्रोजन होती है उसे प्राकृतिक गैस के पुर्नः प्रयोग के लिए इस्तेमाल कर लिया जाता है। इसके अलावा जरूरत पड़ती है एक उत्प्रेरक की (Catalyst) जिसके प्रयोग से प्राकृतिक गैस का कुछ अंश ईधन के रूप में काम

करता है। लोह अयस्क जब भट्टी के ऊपर वाले हिस्से से नीचे उतरना शुरु करता है तो निम्न रासायनिक अभिक्रियाएँ होने लगती हैं।

$$3Fe_2O_3+H_2 \rightarrow 2Fe_3O_4+H_2O$$
$$3Fe_2O_3+CO \rightarrow 2Fe_3O_4+CO_2$$
$$Fe_3O_4+H_2 \rightarrow 3FeO+H_2O$$
$$Fe_3O_4+CO \rightarrow 3FeO+CO_2$$
$$FeO+H_2 \rightarrow Fe+H_2O$$
$$FeO+CO \rightarrow Fe+CO_2$$

हाइल थ्री (Hyl III) पद्धति में कोई भी गैस इस्तेमाल की जा सकती है अर्थात यह विधि बहुत ही लचीली है एवं सहज ही जरूरत के मुताबिक ढाली जा सकती है। कोयला आधारित पद्धति से स्वच्छ लोहा तैयार करने की अनेक विधियां हैं। इनमें कम गुणता के कोककारी कोयले का इस्तेमाल किया जाता है कीमती कोक की जरूरत नहीं पड़ती। आसपास गैस न मिलने से भी कोई समस्या नहीं होती SL/RN प्रणाली का विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है। क्योंकि इसका प्रचलन काफी बढ गया है। इस प्रणाली का मूल सूत्र और प्रवाह चित्र–9 और 10 में दिखाया गया है।

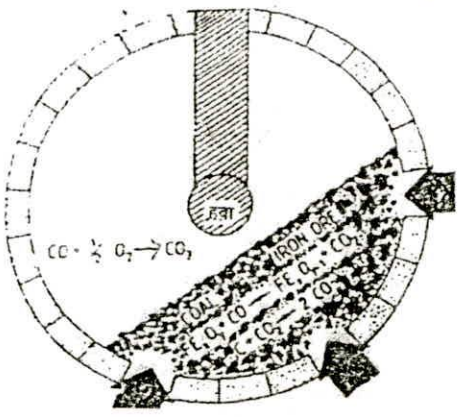

चित्र–9 : घूर्णी भट्टी के भीतर होने वाली रासायनिक अभिक्रियाएं

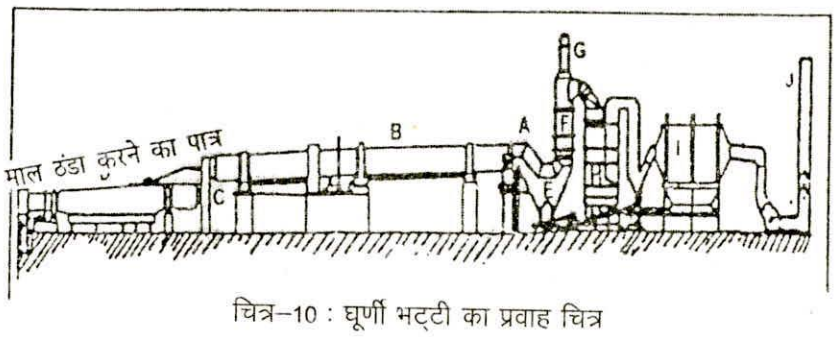

चित्र–10 : घूर्णी भट्टी का प्रवाह चित्र

A. घानभार B. घूर्णी भट्टी C. चौंगा D. माल ठंडा करने का पात्र E. धूलकणों को संभालने का पात्र F. गैस निकालने का रास्ता G. आपात कालीन बहिर्गमन H. अतिरिक्त गैस का बॉयलर I. विद्युत् धूलि संग्राहक यंत्र J. सक्रिय चिमनी।

चित्र–9 से देखा जा सकता है कि भट्टी के भीतर कौन सी रासायनिक अभिक्रियाएं हो रही हैं। इस भट्टी में कच्चे माल (लोह अयस्क, कोयला, चूना पत्थर इत्यादि) एवम् हवा का विपरीत दिशा में प्रवाह होता है। भट्टी के सख्त हिस्से से कच्चा माल डाला जाता है और दूसरे हिस्से से हवा पहुंचाई जाती है। कभी–कभी हवा के साथ चूरा कोयला भी मिला दिया जाता है। इसके अलावा जरूरत के मुताबिक अतिरिक्त हवा, भट्टी की परिधि में नाना स्थानों से पहुंचाने का बंदोबस्त रहता है। फलतः भट्टी में सही ताप पहुंच जाता है। जिससे नियंत्रण करना सहज हो जाता है। रासायनिक अभिक्रियाएं भली–भांति हो सकती है। इस पद्धति में ताप का नियंत्रण इस प्रकार करना होता है कि रासायनिक अभिक्रिया में कोई बाधा न पहुंचे एवं साथ–साथ यह ख्याल रखा जाता है कि कोयला के जलने से प्राप्त राख अंदर लगी उच्चतापसह ईंटों पर जमती न जाए।

SL/RN के अलावा नए–नए नामों से अनेक विधियां प्रचलित हो रही हैं। जैसे कि ACCAR, KRUPPCODIR, DRC-DR इत्यादि। भारत में हमारी अपनी पद्धतियाँ भी हैं। जैसे :– SIIL, OSIL, TATA-IPICOL, JINDAL इत्यादि। सभी जगह लोह अयस्क और कोयला दोनों की गुणता का अच्छी तरह परीक्षण करने के बाद ही इन्हें व्यवहार में लाया जाता है। अयस्क में मूल लोहा कम से कम 65 प्रतिशत होना चाहिए तथा अयस्क ऐसा होना चाहिए कि उच्च ताप पर चूरा न हो जाए। चूरा अयस्क

इस्तेमाल करने के लिए पहले उसे पिंडित कर गुटिकाओं के रूप में ढाल लिया जाता है। कोयला इस तरह का होना चाहिए कि उत्पन्न राख की मात्रा बहुत अधिक न हो और 1100 सेंटीग्रेड तक कोयले की मजबूती बनी रहे।

- .स्पंज आयरन का भंडारण खुली जगह में जल और हवा के सम्पर्क में नहीं होना चाहिए क्योंकि यह पुनः ऑक्साइड में बदल् जाता है। जिससे ताप उत्पन्न होता है। ताप में क्रमशः वृद्धि पर स्पंज आयरन खुद व खुद जलना शुरु कर सकता है। इसी वजह से स्पंज आयरन पर दाब डालकर ईंट के जैसा खूब सख्त और सघन कर लिया जाता है इसे स्पंज आयरन ब्रिकेट कहते हैं। इनका इस्तेमाल करना सहज होता है। इस तरह का स्पंज आयरन HBI के नाम से जाना जाता है। हालांकि इसमें छिद्र नहीं होते और अंदर से सहज ही ऑक्साइड में परिवर्तित भी नहीं होता।

प्रगलन अपचयन प्रक्रम द्वारा लोह अयस्क से तरल लोहा बनाना (Smelting Reduction Process)

इस पद्धति में मुख्यतः दो चरण हैं। पहले चरण में अयस्क आंशिक रूप से एवम् दूसरे में संपूर्ण रूप से ऑक्सीजन वियोजित हो जाता है। दूसरे चरण में ही तरल लोहा तैयार होता है। जर्मनी में सर्वप्रथम शोध हुए जिनमें के.आर. पद्धत्ति जो आजकल कोरक्स के नाम से परिचित है, चालू हुई थी। चित्र 20 में इन दो चरणों का मूल सूत्र साफ–साफ दिखाया गया है। कोरक्स पद्धति में ढेले जैसे बड़े लोह अयस्क के टुकड़े अथवा गोलियां इस्तेमाल की जाती है और भी पद्धत्तियां है जिनमें लोह अयस्क के चूरे और कण इस्तेमाल होते हैं।

अच्छे कोककारी कोयले की उपलब्धि सारे संसार में क्रमशः घट रही है। जिसकी वजह से इस पद्धत्ति की उपयोगिता बढ़ रही है। अनेक देशों में कच्चा माल व्यवहार करने की नई–नई प्रणालियाँ विकसित हो रही हैं। मसलन Hismelt, Plasmamelt, Romelt, Kawaski, Sumitomo, Dios इत्यादि। भारत में Corex पद्धति चालू हुई है और रोमेलट पद्धति चालू करने की कोशिश चल रही है। इस तरह की पद्धति और प्रणाली में निम्नलिखित सुविधाएं है :

- ढीला और महीन दोनों तरह के लोह अयस्क इस्तेमाल कर सकते हैं गुटिका भी इस्तेमाल हो सकती हैं। कोक की जरूरत नहीं पड़ती।

- अब तक इन पद्धतियों की क्षमता सीमित है। जिसकी वजह से पूंजी कम लगती है परंतु प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन की जरूरत होने की वजह से पूंजी की जरूरत पड़ती है।
- गलित लोहा तैयार करते समय अतिरिक्त गैस प्रचुर मात्रा में मिलती है। जिसका इस्तेमाल कर बिजली उत्पादन किया जाता है। इस बिजली से ऑक्सीजन बना लेने की वजह से उत्पादन खर्चा कम हो जाता है और अतिरिक्त बिजली बेच कर कुछ मुनाफा भी कमाया जा सकता है।

गलित लोहे के उत्पादन के बाद की अभिक्रियाएं

धमन भट्टी से निकला तरल लोहा इस्पात बनाने के लिए भेजा जाता है। इस्पात अच्छी गुणता का बने एवम् इस्पात उत्पादन की क्षमता में वृद्धि हो इसके लिए इस्पात भट्टी में भेजने के पहले गलित लोहे से अवांछित द्रव्य यथासंभव घटाने की कोशिश की जाती है। मसलन सल्फर, सिलिकन, फास्फोरस इत्यादि। इसके लिए गलित लोहे की अनेक यौगिकों द्वारा (चूना, मैग्नीशियम, CaSi इत्यादि) विभिन्न रासायनिक अभिक्रिया की जाती है। इसके लिए कभी–कभी तारपिडो आकार की एक विशेष बाल्टी का इस्तेमाल किया जाता है।

★★★

अध्याय 3

इस्पात उत्पादन

अभी तक हम लोगों ने लोहा क्या होता है, लोहे और इस्पात में क्या फर्क है, लोहे और इस्पात के विभिन्न इस्तेमाल तथा लोह–अयस्क से किस तरह लोहा बनता है, इत्यादि बातों की चर्चा की अब हमारा मुख्य विषय इस्पात तैयार करना होगा।

बंग्ला भाषा में इस्पात शब्द का उल्लेख प्रायः नहीं मिलता आम जनता में भी इस्पात के लिए लोहा शब्द ही बरतते हैं। लोहे का कील, लोहा की मूठ, लोहे की खुरपी, लोहे का कड़ा–साँकल, लोहे की रेल, लोहे की मशीन इत्यादि। यानि बोल–चाल की भाषा में लोहे और इस्पात का फर्क नहीं किया जाता। सब ही लोहा है। इस्पात शब्द संभवतः पोर्तगाली शब्द इस्पाड से आया है।

इस्पात उत्पादन पद्धति का आधार

धमन भट्टी से जो गला लोहा प्राप्त होता है उसमें कार्बन बहुत अधिक (3 प्रतिशत से ज्यादा) होता है एवं अनेक काम के और कई फालतू धातु, गंदगी और तत्व मिले होते हैं जैसे कि सल्फर (S), फॉस्फोरस (P), सिलीकन (Si), मैंगनीज (mn), इत्यादि। इस्पात बनाने के लिए जहाँ तक संभव हो इन पदार्थों को यथावश्यक कम करना पड़ता है और कुछ आवश्यकतानुसार धातु अलग से मिलाने पड़ते हैं। इसका आशय यह हुआ कि गले हुए लोहे में मूलधातु के संग कार्बन, मैंगनीज, सिलीकन, सल्फर, फॉस्फोरस और कुछ धातु मसलन क्रोमियम, वैनेडियम, निकैल आदि बढ़ाए–घटाये जाते हैं। इस प्रक्रिया को कारखाने में परिष्करण (Refining) कहा जाता है। यह परिष्करण

सामान्यतः है ऑक्सीजन के द्वारा किया जाता है। कार्बन ऑक्सीजन के संयोग से CO_2 में बदल जाता है तथा गले धातु से बाहर निकल जाता है। पर ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो ऑक्सीजन के साथ मिल कर सख्त ऑक्साइड बनाते हैं जिन्हें गले हुए लोहे से अलग करने के लिए किसी गालक (flux) की जरूरत पड़ती है। इनकी मदद से इस तरह का रासायनिक मिश्रण तैयार किया जाता है जो इस्पात बनाने के ताप पर गली हुई हालत में हो। इस काम के लिए सबसे ज्यादा चूना कारगर होता है। चूने के साथ सारे ऑक्साइड, खासकर सिलिका (SiO_2), अनेक प्रकार के मिश्रण बना तरल अवस्था में भट्टी की ऊपरी सतह पर तैरने लगते हैं और तरल इस्पात से आसानी से अलग कर लिए जाते है। इस प्रकार तरल धातुमल इस्पात परिष्करण में मदद करता है तरल लोहे से अवांछित द्रव्य निकालने के लिए–

1. कार्बन अपघटन : $[C] + [O] = CO_2$
2. सिलीकन अपघटन : $[Si] + [O] + 2CaO = (2CaOSiO_2)$
3. मैंगनीज अपघटन : $[Mn] + [O] = (MnO)$
4. फॉस्फोरस अपघटन : $2[P] + 5\ [O] - CaO = (CaOP_2O_5)$
5. सल्फर अपघटन : $[S] + CaO = (CaS) + [O]$

इस्पात में रह जाने वाली ऑक्सीजन का अपघटन :

क. FeSi की सहायता से $[Si] - 2\ [O] = (SiO_2)$

ख. Al की सहायता से $2[Al] + 3\ [O] = (Al_2O_3)$

[ ] का चिह्न धातु के अंदर तथा ( ) तरल धातुमल के अंदर का द्योतक है। ये दर्शाते हैं कि अभिक्रिया परिवर्ती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऑक्सीजन के साथ तथा गालक की मदद से वांछित एवं अवांछित दोनों तरह के अपद्रव्यों (impuritics) को नियंत्रित किया जा सकता है। इस्पात के लिए किसी अपचायक की जरूरत पड़ती है। मसलन ऐलुमिनियम अथवा फेरा–सिलीकन/साधारणतः फेरो–सिलीकन इस्पात भट्टी में अथवा बाल्टे (Ladle) में डाला जाता है। ऐलुमिनियम को ढलाई करते वक्त बाल्टी में डाला जाता है। रासायनिक समीकरण ऊपर लिखे गए हैं।

हम लोग जानते हैं कि इस्पात के खास खास उपयोग के अनुसार धातु की रासायनिक विशिष्टताएं होती हैं। इसी कारण इस्पात में विशिष्ट धातुओं को डाला जाता है, परंतु ऑक्सीजन पर नियंत्रण पा लेने के बाद ताकि ये बहुमूल्य पदार्थ ऑक्साइड बनकर धातुमल में न चले जाएं। ये सारे धातु इस्पात में अच्छी तरह घुल–मिल जायें इसलिए मास्टर मिश्रातु बनाकर या धातु–मिश्रण (जो कम ताप पर ही गल जाते हैं) बनाकर मिलाए जाते है मसलन फेरो–क्रोम, फेरो–वेनेडियम, फेरो–टंग्स्टेन इत्यादि। इस तरह पूर्वकल्पित इस्पात तैयार किया जा सकता है –

अतएव, इस्पात तैयार करने का लक्ष्य सारांश में इस प्रकार है –

- कार्बन की मात्रा को आवश्यकतानुसार घटा देना तथा बाद में जरूरत के मुताबिक ऊपर से मिला देना।
- यथासंभव अवांछित धातुओं तथा अपद्रव्यों तथा अतिरिक्त ऑक्सीजन को घटा देना तथा तरल इस्पात से उन्हें अलग कर देना।
- जरूरत की धातुओं को उचित मात्रा में मिला देना।

इस्पात उत्पादन की विभिन्न विधियाँ

इस्पात परिष्करण विधियों का कई तरह प्रयोग किया जाता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि कच्चा माल किस तरह का है तथा किस रूप में शक्ति (बिजली, ताप, यांत्रिक आदि) का प्रयोग हो रहा है। आज कल दो विधियों का ज्यादातर प्रयोग हो रहा है :

क. ऑक्सीजन प्रयोग से इस्पात बनाना

ख. विद्युत् शक्ति के इस्तेमाल से इस्पात बनाना

इसके अतिरिक्त दो पुरानी विधियां भी हैं जो आज भी कहीं–कहीं चल रही हैं– ओपन हार्थ एवं बेसीमर प्रक्रम। इन दोनों पद्धतियों का चलन प्रायः हर देश में खत्म हो चला है, हमारे देश में भी। नए इस्पात कारखानों में अब इन्हें कोई नहीं लगाता। सारे संसार में लगभग सत्तर प्रतिशत इस्पात ऑक्सीजन पद्धति द्वारा बनता है, बाकी विद्युत् पद्धति से।

ऑक्सीजन पद्धति में अपेक्षतया समय भी कम लगता है, शक्ति भी। फलतः, उत्पादन में खर्च भी कम होता है। विद्युत् विधि में स्पंज अथवा वर्जित/स्क्रैप सख्त

किस्म का माल चाहिए जबकि ऑक्सीजन प्रणाली में 30 से लेकर 90 प्रतिशत तरल लोहा चाहिए। हालांकि आजकल विद्युत् भट्टी में भी बिजली का खर्च बचाने के लिए गलित लोहे का प्रयोग किया जाता है पर 50 प्रतिशत से ऊपर नहीं। विद्युत् इस्पात कारखाना बहुत बड़ा नहीं होता परंतु विशेष जरूरत के मुताबिक विभिन्न प्रकार के इस्पात बनाने के लिए यह बढ़िया रहता है।

ऑक्सीजन विधि से इस्पात बनाना

केवल ऑक्सीजन की मदद से इस्पात तैयार करना खासकर महत्वपूर्ण है। तकरीबन सौ साल पहले इंग्लैंड में हेनरी बेसीमर ने हवा द्वारा गलित लोहे का शोधन कर इस्पात बनाया था। जाहिर है, हवा में जो ऑक्सीजन थी उसी का प्रयोग किया गया था। उन दिनों हवा में से शुद्ध ऑक्सीजन निकाल लेने की तकनीक ज्ञात नहीं थी, तभी हेनरी बेसीमर जानते थे कि हवा के बदले शुद्ध ऑक्सीजन का प्रयोग ज्यादा कारगर रहेगा। उससे बढ़िया इस्पात बनेगा। ऑक्सीजन मिलने पर जिस पात्र में इस्पात बनाया जाएगा। उसे उच्च ताप पर संरक्षित रखने के लिए बहुत उच्च कोटि की उच्चतापसह ईंटों की जरूरत होगी जो पात्र पर कवच का काम करेंगी।

जिस पात्र में ऑक्सीजन को तरल लोहे में फूँका जाएगा उसे कन्वर्टर कहते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध तक संसार का लगभग आधा इस्पात उत्पादन कन्वर्टर प्रक्रम तथा आधा ओपन हार्थ तथा विद्युत् भट्टियों से प्राप्त होता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बेसीमर प्रक्रम में सुधार करने के लिए यूरोप में अनेकों शोध कार्य हुए। शोध कार्य के मुख्य तीन विषय इस प्रकार थे :

क. हवा में नाइट्रोजन बहुत होता है जो इस्पात बनाने में किसी काम का नहीं। बल्कि इस नाइट्रोजन के साथ कन्वर्टर से बड़ी मात्रा में ऊष्मा बाहर चली जाती है। इसके अलावा नाइट्रोजन की वजह से इस्पात भंगुर बन जाता है। इसलिए हवा को नाइट्रोजन से मुक्त करना आवश्यक है।

ख. इसका मतलब हवा से शुद्ध ऑक्सीजन तैयार करना होगा वह भी कम से कम खर्च पर। इसी वजह से उच्च क्षमता वाले ऑक्सीजन संयंत्र के निर्माण का श्री गणेश हुआ।

ग. दूसरी तरफ शुद्ध ऑक्सीजन का प्रयोग करने से गले हुए लोहे में धात्विक पदार्थ, तेज रासायनिक प्रक्रिया कर जल्दी ही उच्च ताप का सृजन करने लगे। इस्पात बनाने वाले पात्र को क्षरण से बचाने के लिए उच्चतापसह ईंटों का प्रचलन भी शुरु हो गया।

अनेक परीक्षणों के बाद आधुनिक कन्वर्टर अब उच्च कोटि के तथा कंप्यूटर नियंत्रित होते हैं। इस पद्धति को आजकल बेसिक ऑक्सीजन भट्टी कहते हैं। यह प्रक्रम सर्वप्रथम 1949 में आस्ट्रिया देश में प्रारंभ हुई थी। इसके बाद ओ.एफ की अनेक किस्में उन्नत हुई हैं मसलन अधिक उत्पादन, तापशक्ति, तापशक्ति का कम दुरुपयोग, गैस के साथ निकलने वाली ताप ऊर्जा का पुनःप्रयोग, उत्पादन क्षमता की वृद्धि, उच्च कोटि का इस्पात बनाने की क्षमता इत्यादि।

ऑक्सीजन पद्धति से इस्पात बनाने के मुख्य घटक

सौ साल पहले बेसीमर महोदय ने हवा की जगह शुद्ध ऑक्सीजन का प्रयोगकर शीघ्र इस्पात बनाने का जो विचार दिया था वह कार्यान्वित हो चुका है, बी.ओ.एफ प्रक्रम के साथ–साथ अन्य सभी पद्धतियों में बेसीमर के जीवन काल में ऑक्सीजन देने के लिए हवा का इस्तेमाल ही होता रहा था। यह हवा कई बार भट्टी के दोनों तरफ से, कई बार पेंदे से प्रवाहित की जाती थी। इस तरह तरल लोहे से अवांछित कार्बन तथा अन्य धात्विक पदार्थ, ऑक्सीजन एवं गालक की सहायता से अलग कर दिए जाते थे। इस काल में दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं। एक थी थॉमस अथवा बेसिक बेसीमर और दूसरी सिर्फ बेसीमर पद्धति। बेसीमर पद्धति में कन्वर्टर का आवरण अम्लीय अथवा अन्य प्रकार की ईंटों से ढँक दिया जाता था। इस पद्धति में कार्बन, सिलिकन तथा थोड़ा फास्फोरस तरल लोहे से बाहर निकाल कर इस्पात बनाया जाता था। दूसरी तरफ बेसिक बेसीमर पद्धति में पात्र को क्षारीय ईंटों से ढँका जाता था जिसकी वजह से सल्फर तथा फास्फोरस दोनों को अच्छी तरह गले लोहे से दूर करना संभव था। परंतु, इससे इस्पात की गुणता निम्नकोटि की होती थी एवं खर्च भी अधिक आता था। इसलिए कोशिश चलती रही कि हवा के बदले शुद्ध ऑक्सीजन का प्रयोग किया जाए। आज वह बी ओ एफ पद्धति के नाम से सुविख्यात है। 1949 में इस पद्धति का आस्ट्रिया में प्रचलन हुआ, तब इसे नाम दिया गया एल.डी. पद्धति। इस पद्धति में ऑक्सीजन को कन्वर्टर के ऊपर से पानी द्वारा ठंडा करके एक पाईप के

माध्यम से भेजा जाता था, जिसे लांस कहा जाता था। इससे इस्पात परिष्करण का काम बड़ी द्रुत गति से होने लगा। बाहर निकलने वाली गैसों में नाइट्रोजन के न होने की वजह से परिमाण कम एवं ताप–ऊर्जा अधिक थी जिसका इस्तेमाल होने से खर्च में कमी आ गई। यह सफाई इतनी तेज गति से एवं इतनी ताप बढ़ाने वाली होती कि गलित इस्पात के ताप को स्क्रैप डालकर अथवा अयस्क डालकर अथवा स्पंज लोहा डालकर नियंत्रित करना पड़ता था। इससे उत्पादन भी बढ़ जाता था। समय के साथ समझदारी बढ़ती रही एवं कन्वर्टर की ईंटें उच्चकोटि की उच्चताप सहपदार्थों से बनने लगीं तथा पात्र की संरचना में भी सुधार होने लगे। इस प्रकार के पात्र की क्षमता 30 टन से लेकर 500 टन तक पहुँच गई। आज सारे संसार में शुद्ध ऑक्सीजन का प्रयोग कन्वर्टर के मुंह से जुड़े लांस के माध्यम से होता है। किन्तु फिर भी थोमस पद्धति की तरह कन्वर्टर के मुंह से जुडे लांस के माध्यम से होता है। किंतु फिर भी थीमस पद्धति की तरह कर्न्वटर के तले से ऑक्सीजन फूँकने का विचार अभी भी बंद नहीं हुआ है। कारण कि उसमें तरल लोहे की सफाई और अच्छी तरह एवं जल्दी करना संभव है। इस के अलावा भट्टी के अंदर गलित धातु का ताप कम और रासायनिक संघटन एकसमान रखा जा सकता है। चित्र–11 में ऊपर से ऑक्सीजन प्रयोग द्वारा कन्वर्टर में गले हुए लोहे की अवस्था तथा प्रणाली की सीमा साफ–साफ दिखाई गई है। इस सीमा रेखा को दूर करने के लिए पात्र के अंदर सफाई के प्रक्रिया तेज करने के लिए अनेक देशों में विचार हो रहा है। दो विचार धाराएँ बन रही हैं –

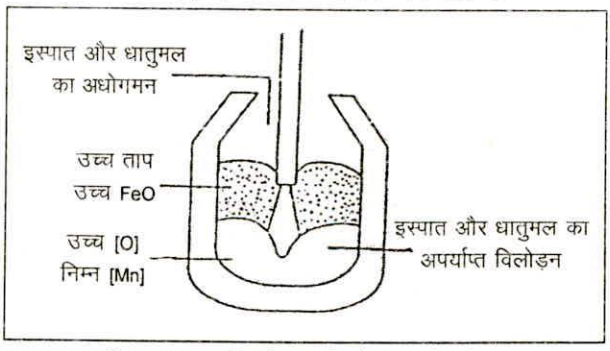

चित्र–11 : ऑक्सीजन वियोजन की सीमा

क. ऑक्सीजन वाही पाईप को सर्पिल आकार देकर, समूचे तरल लोहे को और अधिक आलोडित करना तथा लोहे एवं धातुमल का आपसी संयोग विस्तृत करना।

ख. पात्र के ऊपर से ऑक्सीजन तथा नीचे से ऑक्सीजन अथवा नाईट्रोजन अथवा आर्गन गैस के प्रवाह द्वारा गले हुए लोहे को प्रचंड रूप से आलोंडित कर रासायनिक अभिक्रियाओं को तेज करना। चित्र–12 में ये दोनों पद्धतियां दर्शाई गई हैं।

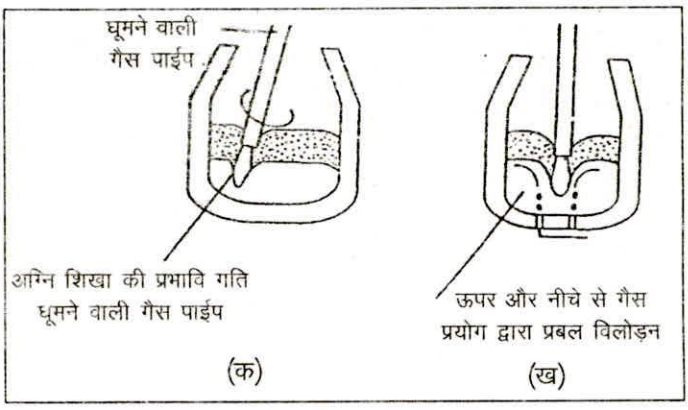

चित्र : क. कन्वर्टर में सर्पिलाकार ऑक्सीजन पाईप की मदद से विलोडन
ख. ऊपर तथा नीचे से गैस प्रयोग द्वारा प्रबल विलोड़न

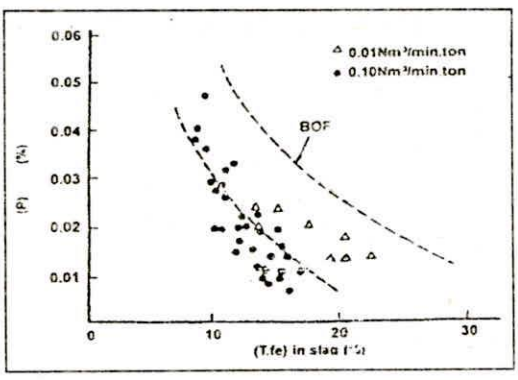

चित्र–12 : ऊपर से ऑक्सीजन गैस की मात्रा और नीचे से गैस की मात्रा

ऑक्सीजन के संपर्क में आने पर लोहे का कुछ हिस्सा और कार्बन अपने–अपने ऑक्साइड में बदलने लगते हैं जिसे FeO एवं CO। यह FeO लोहे में आवांछित पदार्थों को ऑक्साईड में बदलता है जो गालक के साथ जुड़ कर धातुमल में चले जाते हैं। गले हुए लोहे के ऊपर जब ऑक्सीजन पूरे दबाव के साथ टकराती है तो उस जगह को प्रविष्टि अंचल (IMPINGEMENT ZONE) कहते हैं। इस अंचल का ताप 2500 से 3000 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है। ऑक्सीजन ज्यादातर कन्वर्टर में 12 बार दबाव पर भेजा जाता है। फलस्वरूप गलित लोहा प्रचंड रूप से विलोड़ित होता है तथा उसका शोधन तेज गति से होने लगता है। ऑक्सीजन लांस की मुख नाली (नोजल) में एक अथवा अनेक छेद होते हैं तथा कोशिश की जाती है कि ऑक्सीजन, गलित धातु के ऊपर यथा संभव फैल जाए। जरूरत पड़ने पर कोई गालक जैसे की चूना बहुत महीन आकार में इसी पाईप के बीच से होकर भेजा जाता है ताकि रासायनिक अभिक्रिया आसान हो जाए।

लोहा के शोधन के समय प्रचुर CO गैस बनती है जो गले हुए लोहे के बीच से बुलबुलों के रूप में बाहर निकलती हैं, जैसा कि सोड़े की बोतल में देखा जाता है। यह गैस जब बहुत अधिक मात्रा में एक साथ कन्वर्टर से निकलती है तो उनके साथ गले हुए लोहे एवं धातुमल के छोटे–छोटे कण भी निकल आते हैं। यह सब मिलकर पात्र के ऊपर वाले हिस्से में एक घोल जैसा मिश्रण (गैस एवं तरल कण) बनाते हैं जो भर जाता है। इसके साथ–साथ रासायनिक अभिक्रिया भी जारी रहती है। गले हुए माल से कार्बन कुछ कम होते ही सिलीकन, मैंगनीज, फॉस्फोरस की सफाई शुरू हो जाती है। परंतु, इस प्रणाली द्वारा सल्फर की सफाई एक सीमा तक ही संभव हो पाती है। सल्फर का एक अंश SO_2 के रूप में गैस के साथ निकल जाता है तथा कुछ हिस्सा धातुमल में चला जाता है जो कि धातुमल के ताप तथा उसकी क्षारीयकता (CaO/SiO_2) पर निर्भर करता है।

सिर्फ नीचे अथवा ऊपर से अथवा ऊपर से नीचे दोनों तरफ से एक साथ ऑक्सीजन तथा अन्य गैसें (CO_2, Ar, N_2 आदि) भेजने से BOF पद्धति के प्रचालन में कई तरह की सुविधाएं एवं अड़चने देखी गई हैं चित्र–12 में कुछ भाग दिखाए गए हैं।

सिर्फ नीचे से अथवा सिर्फ ऊपर से ऑक्सीजन प्रयोग करने की कुछ विशेष सुविधाएं/असुविधाएं हैं :–

सुविधा	असुविधा
क. सिर्फ ऊपर से ऑक्सीजन प्रवेश • सहज साध्य • धातुमल अच्छा	• अतिरिक्त खर्च • धातु एवं धातुमल की क्रियाओं में कमी • गला लोहा/इस्पात तथा गला धातुमल खूब विलोड़ित नहीं होते
ख. सिर्फ नीचे से ऑक्सीजन प्रवेश • ऑक्सीजन योग में वृद्धि कम • धातु एवं धातुमल की अभिक्रिया पर्याप्त • गला लोहा/इस्पात तथा गले धातुमल का विलोड़न संतोषजनक	• स्क्रैप लोहे की खपत कम

इस तरह से यह समझ में आता है कि ऊपर से ऑक्सीजन तथा नीचे से किसी निष्क्रिय गैस का एक साथ प्रयोग करने पर अनेक सुविधाएं मिल सकती हैं। मसलन –

1. अतिरिक्त ऑक्सीजन के इस्तेमाल की संभावना कम हो जाती है।
2. गलित माल का विलोडन संतोषजनक होता है तथा तरल धातु का ताप तथा रसायनिक संघटन एकसमान रहता है।
3. धातु एवं धातुमल की क्रिया अच्छी तरह होती है।
4. प्रणाली में फेर बदल संभव होते हैं।
5. धातुमल अच्छी तरह तैयार हो जाता है।

उच्च कोट की BOF पद्धति में ऑक्सीजन तथा निष्क्रिय गैस इस्तेमाल करने पर जो जो सुविधाएं मिलती हैं। उनकी झलक निम्नलिखित है जैसा की सिलिकन इस्पात में होता है :

1. इस्पात की उत्पादकता में 0.8 प्रतिशत वृद्धि।
2. ऐलुमिनियम के इस्तेमाल में 0.35 किलो/टन की कमी।
3. Fe MN के प्रयोग में 1.25 किलो/टन की कमी।
4. चूने की जरूरत में 3 किलो/टन की कमी
5. ऑक्सीजन के इस्तेमाल के समय में एक मिनट हीट की कमी (NK-CB पद्धति के अनुभव से प्राप्त आंकड़े)

अलग–अलग इस्पात कारखानों ने अपने अनुभवों के अनुरूप मूल BOF पद्धति से इस्पात बनाने की विधियों में थोड़ा–बहुत फेर बदल कर नया नामकरण कर लिया है। कुछ ऐसे ही नाम हैं :–

LD-KG (कावासाकी), LD-AC, NK-CB (NKK), OTB (कोबे) B-BOP, K-BOP इत्यादि।

अब चित्र–13 में धातुमल में स्थित समग्र लोहा तथा फास्फोरस की स्थिति दिखाई गई है। निष्क्रिय गैस का प्रवाह बढ़ाकर, फास्फोरस की स्थिति में सुधार संभव है।

चित्र–14 में तरल इस्पात के अंदर कार्बन तथा मैंगनीज की स्थिति दिखाई गई है। देखा गया है कि निष्क्रिय गैस का प्रवाह बढ़ाने पर इस्पात में Mn की मात्रा बढ़ जाती है। इस कारण इस अवस्था में इस्पात के अंदर O_2 कम हो जाता है तथा धातुमल में समग्र लोहा भी कम हो जाता है (चित्र–25 एवं 26 देखें)। अतः लोहे की लब्धि अधिक होगी, फेरोएलॉय की खपत कम होगी एवं कार्बन का वियोजन भी उन्नत किस्म का होगा। साधारणतः ऊपर तथा नीचे दोनों ओर से O_2 एवं ऑक्सीजन + प्राकृत गैसें देने से अनेक प्रकार की उन्नति होती है मसलन :

- स्क्रैप गलकर समान रूप से तरल माल में घुल जाती है।
- गैसें प्रवाह का आवृति–काल 25 प्रतिशत कम हो जाता है।
- लब्धि बढ़ जाने से उत्पादन अधिक होता है तथा लोहा और मिश्रातु उत्तम होते हैं।
- रासायनिक मिश्रण ठीक–ठीक तैयार किया जाता है जिससे फास्फोरस तथा नाइट्रोजन का वियोजन अच्छा होता है।

95

लोहा व इस्पात उत्पादन

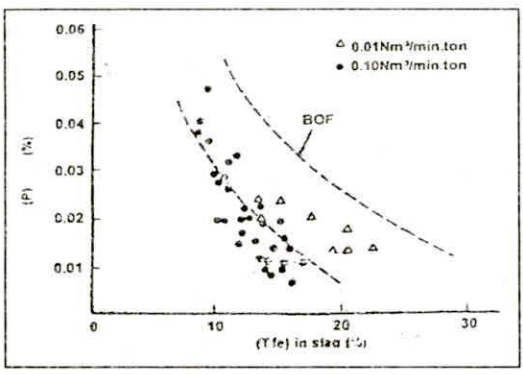

चित्र–13 : धातुमल में समग्र लोहे तथा धातु में फास्फोरस की स्थिति

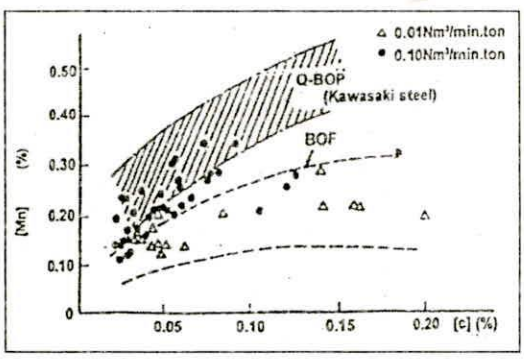

चित्र–14 : कार्बन वियोजन के बाद कार्बन तथा मैंगनीज की स्थिति

- इस्पात स्वच्छ होता है।
- धातुमल कम होता है जिससे छलकना कम होता है।
- कन्वर्टर का सेवाकाल बढ़ जाता है।
- उत्पादन की शक्ति बढ़ती है और दूसरे खर्चे कम होने की वजह से लाभ होता है।

मोटे तौर पर ऊपर से नीचे दोनों हिस्सों में ऑक्सीजन/दूसरी गैस से तरल लोहे को इस्पात में बदलने का आधुनिक उपाय यहीं है। इससे उच्च गुणता का इस्पात बनाना संभव होता है। हालांकि आजकल इससे भी उन्नत प्रणालियों का आविष्कार

हुआ है तो भी अधिकांशतः इस्पात प्रचालित विधियाँ द्वारा ऊपर से नीचे ऑक्सीजन प्रयोग कर अथवा ऊपर ऑक्सीजन और नीचे से ऑक्सीजन एवम् नाइट्रोजन अथवा आर्गन अथवा कार्बन डाईऑक्साइड जैसी गैसों का प्रयोग किया जाता है।

स्वचालित प्रक्रम (Automation process)

ऑक्सीजन के संयोग से इस्पात बनाने की प्रणाली पर संपूर्ण रूप से नियंत्रण और अनुकूलन करने के लिए आजकल विभिन्न उपकरण उपलब्ध है। जैसे Electronic Processing Technique और Automatic Operation Control अर्थात् उत्पादन पद्धति के सारे तथ्य सामने रखकर स्वचालन द्वारा नियंत्रित करना।

सबसे पहले जरूरत है प्रणाली के चालू रहते आवश्यक तथ्यों और समस्याओं पर हर वक्त दृष्टि रखता। इसके लिए Sub-lance के जरिए कार्बन और ताप नापने के यंत्र का प्रयोग ताप और कार्बन को प्रत्यक्ष रूप से पता लगने पर निकलने वाली गैसों का संघटन प्राप्त होने पर कन्वर्टर के भीतर रासायनिक अभिक्रिया की दिशा क्या है और किस रूप में चल रही है। इसका निर्णय करना संभव है। इस स्वचालित व्यवस्था के अलावा 10–15 मिनट ऑक्सीजन देने के पश्चात तरल इस्पात के नमूने का परीक्षण किया जाता है। एवम् ताप की मात्रा नापी जाती है। इस्पात का ताप एवम् रासायनिक संघटन अगर ठीक न हो तो ऑक्सीजन दी जाती है। स्वचालित प्रक्रिया नियंत्रण व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए पूर्व अभिज्ञता के अनुसार नाना प्रकार के इस्पात तैयारी करने के तथ्यों जैसे दिन में तरल इस्पात के ढुलाई की संख्या ऑक्सीजन दिए जाने का ठीक–2 समय का आंकलन कर उपयोगी मॉडल तैयार किया जाता है। इस्पात के ताप और उसमें कार्बन ठीक–2 होने पर दूसरी बार ऑक्सीजन का प्रयोग बहुत कम जरूरी रह जाता है। एवम् एक जैसा इस्पात बार–बार तैयार करना संभव हो जाता है।

विद्युत् आर्क भट्टी में इस्पात तैयार करना

हमने देखा था कि जब कार्बन, सिलीकन आदि तत्व ऑक्सीजन से रासायनिक संयोग करते हैं तो प्रचंड ताप उत्पन्न होता है। इस तापशक्ति से ही इस्पात प्रक्रिया उत्पादन की बाकी प्रक्रियायें पूरी होती हैं। इसी वजह से वी. ओ. एफ. प्रणाली में बाहर

7—302 Min. of HRD/2013

से कोई अतिरिक्त ताप देने की जरूरत नहीं पड़ती। हाँ विद्युत् भट्टी की बात अलग है। इस पद्धति में चूँकि गला हुआ लोहा (जिसमें कार्बन और सिलिकन बड़ी मात्रा में होता है) और वर्जित लोहइस्पात स्क्रेप तथा स्पंज लोहे का अंश अधिक होता है। जिससे विद्युत् आर्क भट्टी में इस्पात बनाने के लिए बिजली की आपूर्ति की जाती है। दो अथवा तीन ग्रैफाईट इलैक्ट्रोड (डी सी अथवा ए सी आर्क) के जरिए भट्टी में विद्युत् भेजी जाती है।

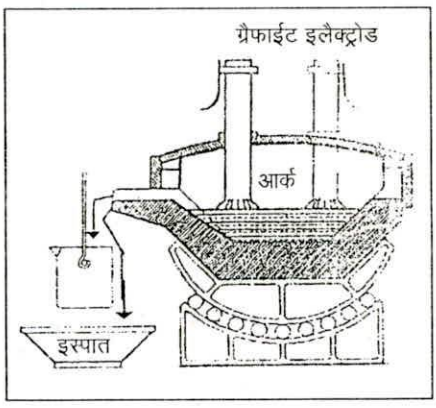

चित्र–15 : विद्युत् आर्क भट्टी

यह भट्टी चालू करते समय सबसे पहले ठंडा माल जैसे कि स्क्रैप लोह इस्पात के टुकड़े गलाए जाते हैं। इलैक्ट्रोड को सीधे सीधे कच्चे माल को स्पर्श नहीं करने दिया जाता, बल्कि थोड़ी दूरी पर खड़ा रखा जाता है जिससे आर्क बन जाती है और ऊष्मा बढ़ने लगती है। इसलिए ऐसी भट्टी को आर्क भट्टी कहा जाता है। जहाँ यह आर्क बनती है वहाँ का ताप 3500 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। आसानी से न गलने वाला इस्पात-मिश्रातु भी यहाँ गल जाता है। इससे धातु का नुकसान कम होता है। भट्टी में गलाया गया स्क्रैप माल कई किस्म का मिला जुला इस्पात होता है जिससे सही गुणता का ह्रास होने लगता है। इसलिए आजकल शायद ही विद्युत् भट्टी में स्पंज लोहा इस्तेमाल करते हैं। स्पंज लोहा, रद्दी लोह इस्पात से कहीं अधिक साफ होता है। फलतः नए बनने वाले इस्पात मे अवांछित तत्व (ट्रेस एलीमेंट) बहुत कम रखे जा सकते हैं।

विद्युत् के सहयोग से इस्पात उत्पादन में निम्नलिखित सुविधाएं हैं :–

- सभी प्रकार के इस्पात-मिश्रातु बनाए जा सकते हैं।
- प्रयुक्त कच्चे माल को किसी भी शोधन की जरूरत नहीं पड़ती। स्पंज लोहा, स्क्रेप, पिग आयरन आदि सीधे इस्तेमाल में आ जाते हैं।
- धातु गलाने से लेकर सफाई करने तक सभी काम इच्छानुसार कर सकते हैं। उन्नत किस्म के उपकरणों की मदद से समग्र प्रणाली को स्वचालित बनाया जा सकता है।
- कारखाना बहुत बड़ा होने की जरूरत नहीं, कम पूंजी से भी काम चल सकता है।

विद्युत् भट्टी में चूँकि सख्त माल डाला जाता है, इसलिए चालू करते समय कई चरणों में भट्टी में डाले गए माल को सफाई लायक बना लिया जाता है मसलन :

क. स्क्रैप एवं स्पंज लोहा अथवा डी.आर.आई. चूना पत्थर तथा कुछ लोह अयस्क भट्टी में स्पंज लोह आदि थोड़ी–थोड़ी मात्रा में क्रमशः लगातार धीरे–धीरे डालते जाते हैं।

ख. इलैक्ट्रोड को नीचे उतार कर विद्युत् द्वारा सीधे माल को गला सकते हैं। माल गलने के साथ–साथ लोह अयस्क में उपस्थित ऑक्सीजन, सफाई का काम शुरू कर देती है। इस्पात तैयारी का काम तेज करने के लिए बाहर से पाईप द्वारा ऑक्सीजन भेजकर गले माल की सफ़ाई की जाती है। अंत में गले इस्पात में घुले ऑक्सीजन का प्रयोग किया जाता है ताकि गुणता अच्छी रहे।

बी.ओ.एफ की तरह इ.ए.एफ (विद्युत् आर्क भट्टी) पद्धति में भी कई प्रकार से उन्नति हुई है। जिससे उत्पादन क्षमता बढ़ी है, बिजली का खर्च कम हुआ है, फिजूल खर्ची कम हुई है एवं उच्च गुणता का इस्पात तैयार किया गया है। इसके कुछ एक उदाहरण निम्नलिखित हैं :–

- अतिउच्च शक्ति सम्पन्न भट्टी (यू.एच.पी.)
- शीघ्र गलाने के लिए ऑक्सीजन और उसके साथ ईंधन की आपूर्ति, मसलन पाईप के द्वारा गैस और तेल का प्रयोग
- भट्टी के निचले हिस्से से तरल इस्पात का निष्कासन

- भट्टी की छत तथा दीवाल को ठंडा रखना ताकि उच्च तापसह ईंटे कम खर्च हो।
- भट्टी में गर्म माल डालकर ऊष्मा बचाना अर्थात बिजली का खर्च घटाना
- धातुमल को फेनिल बनाना

ज्यादातर ये भट्टियाँ ए.सी. विद्युत् धारा पर चलती हैं। आजकल डी.सी. प्रवाह वाली भट्टियां भी बनने लगी हैं जिनमें बिजली और तापरोधक वस्तुओं का खर्च अपेक्षाकृत कम है जिससे उत्पादन खर्च कम पड़ता है। इन भट्टियों से साथ आनुषंगिक धातुकर्म का प्रयोग कर उत्पादन क्षमता और गुणता दोनों में सुधार होता है। बाद में इस विषय पर और चर्चा करेंगे।

प्रेरण भट्टी द्वारा इस्पात बनाना

अन्य किस्म की विद्युत् भट्टी होती है जिसे इंडक्शन भट्टी अथवा प्रेरण भट्टी कहा जाता है। इस भट्टी में धान भार के साथ विद्युत् का सीधे कहीं संस्पर्श नहीं होता है। परोक्ष रूप से ताप उत्पन्न होता है। इस भट्टी में एक कुठाली (पात्र) होती है जिसके चारों तरफ ताँबे की नलिकाएं लिपटी होती हैं। कुठाली को ठंडा रखने के लिए इन नलिकाओं द्वारा पानी भेजा जाता है। इन ताँबे की नलिकाओं से विद्युत् प्रवाहित करने पर कुठाली में रखा माल विद्युत् शक्ति से आवेशित हो जाता है और इस आवेशित विद्युत्–प्रवाह की वजह से ऊष्मा उत्पन्न होती है। माल गर्म होकर पिघलना शुरू करता है। (चित्र 16) साधारणतः इन सब भट्टियों में कुछ किलोग्राम से लेकर कई टन तक इस्पात बनाया जा सकता है। खुद बड़ी भट्टी में 20–25 टन माल गलाना संभव है। उच्च गुणता का विशिष्ट इस्पात जो विशेष काम में आता है – जैसे कि हथियारों आदि के लिए यह भट्टी विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। हाँ, अधिकांश इस्पात-मिश्रातु आर्क भट्टी में ही बनाए जाते हैं। हमारे देश में आज कल साधारण इस्पात बनाने के लिए भी अनेक छोटी–छोटी प्रेरण भटट्टियाँ लगाई गई हैं। इसके अनेक कारण हैं जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं।

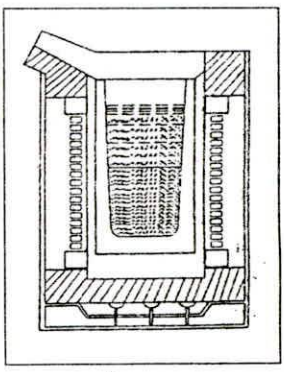

चित्र–16
विद्युत् चालित प्रेरण भट्टी

आनुषंगिक धातु विज्ञान का उपयोग– इस्पात पश्च शोधन

यहाँ आनुषंगिक अथवा सेकेंड्री शब्द का अर्थ यह है कि इस्पात उत्पादन करते समय प्राथमिक शोधन का काम बी.ओ.एफ अथवा इ.ए.एफ में संपन्न हो जाता है परंतु उसके बाद इस्पात का शोधन और गुणता बढ़ाने के लिए यह प्रक्रिया की जाती है। इसको नाम दिया गया है आनुषंगिक धातु विज्ञान अथवा सेकेंड्री मेटलर्जी। पिछले दशकों में पहली सफाई के बाद ही तरल इस्पात को सीधा ढलाई के लिए भेज दिया जाता था। आजकल अनेक बार ऐसा नहीं किया जाता पहले शोधित इस्पात को, विशेष प्रयोजनों के उपयुक्त बनाने के लिए दूसरे पात्र में डालकर विशेष प्रकार से सफाई की जाती है। इसकी सहायता से आवश्यकतानुसार वांछित गुणता प्राप्त कर ली जाती है।

आनुषांगिक धातु का विभिन्न रूपों से उपयोग किया जाता है जिसके लिए विभिन्न पद्धतियों का प्रचलन हो गया है। कुछ उदाहरण नीचे लिखे हैं :–

- इस्पात में अन्य धातुओं का योग आवश्यकतानुरूप ठीक–ठीक करना ताकि इस्पात वांछित संघटन का बनाया जा सके
- भट्टी में मौजूद पूरे इस्पात में ताप और रासायनिक संघटन में एकरूपता लाई जा सके
- प्रायः संपूर्ण रूप से कार्बन–का निष्कासन किया जा सके जिसका विशेष प्रयोजनों विशेषकर आटोमोबाइल इस्पात, जंग–प्रतिरोधी इस्पात, विद्युत् इस्पात आदि में होता है।
- प्रायः संपूर्ण सल्फर का निष्कासन हो सके।
- प्रायः संपूर्ण फास्फोरस अलग किया जा सके।
- प्रायः संपूर्ण गैस को अलग किया जा सके।
- साफ इस्पात तैयार किया जा सके जिसमें अंतर्वेश (inclusions) बहुत अल्प मात्रा में हो।

इन सब विधियों का प्रमुख उद्देश्य है इस्पात के अवांछित अंश को धातु से अलग कर धातुमल में भेज देना। यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि दूसरे पात्र में आनुषंगिक शोधन की सुविधा होने के वजह से पहले पात्र में सफाई का काम अंशतः

पूरा कर लेने के बाद समय बचता है और उत्पादन की दर भी बढ़ाई जा सकती है। फलतः इस नए उपयोग पर जो खर्च होता है उससे लाभ अधिक है।

आनुषंगिक शोधन प्रणाली आरंभ होने से इस्पात उत्पादन में एक शुभ परिवर्तन आया है। साधारणतः यह क्रिया सफाई वाली बाल्टी में, बाल्टी–चूल्ही में अथवा विशेष रूप से बनाए गए पात्रों में संपन्न की जाती है। इसके लिए अनेक पद्धतियों का आविष्कार हुआ है जो निम्नलिखित हैं :–

- धातुमल को इस्पात से अलग करना
- गैस की सहायता से अथवा वैद्युतचुंबकीय विलोडन उत्पन्न कर तरल इस्पात को एकसमान करना
- समुचित मात्रा में धातुएं मिलाना तथा उनका समरूप परिमाण नियंत्रित रखना।
- निर्वात उत्पन्न कर ऑक्सीजन तथा अन्य शोषित गैसों को गले हुए इस्पात से बाहर करना।
- आवश्यकतानुसार इस्पात को गर्म करना (खासकर अविरत ढलाई के लिए)
- ढलाई के समय तरल इस्पात को किसी विशेष गैस के आवरण से ढंक कर रखना ताकि इस्पात वायुमंडल के संपर्क में न आए।
- अविरत ढलाई के समय वैद्युतचुंबकीय उपाय से मशीन के अंदर स्थित तरल इस्पात को जमकर ठोस होने से बचाने के लिए पर्याप्त विलोड़ित करना।

इस तरह ग्राहक के प्रयोजनानुसार इस्पात की गुणता एवं उत्पादन–खर्च कम बनाए रखना सहज हो जाता है। यह लक्ष्य सामने रखकर ही निर्दिष्ट इस्पात तैयार करने के लिए हर संभव प्रणाली का यथोचित विवेचन कर सबसे उपयुक्त उत्पादन पद्धति के चरणों का निर्णय किया जाता है।

ऑक्सीजन निष्कासन

तरल इस्पात को ऑक्सीजन–मुक्त करना उत्तम इस्पात बनाने का प्रमुख कार्य है। यह इस्पात परिशोधन विधि का सबसे आखिरी चरण होता है। बचे–खुचे ऑक्सीजन को फेरो–सिलिकन अथवा ऐलुमिनियम डाल कर अलग किया जाता है। जो इस्पात

में स्थित ऑक्सीजन से संयोग करके अपने–अपने ऑक्साइडों में बदल जाते हैं तथा धातुमल में शामिल हो जाते हैं। परंतु इसके बावजूद थोड़ा बहुत ऑक्सीजन गले इस्पात में ठहर जाता है, जिससे इस्पात की गुणता में कमी आ जाती है। आजकल इस से छुटकाना पाना संभव है। जैसा कि तरल इस्पात भरे बाल्टे को निर्वात (vacuum) में रखने से ऑक्सीजन निकालना अथवा किसी गैस के प्रवाह से तरल इस्पात को इस प्रकार विलोड़ित करना ताकि इस गैस के साथ कुछ ऑक्सीजन भी निकल आए और साथ ही ठोस ऑक्साईड के कण भी ऊपर तैरने लगें। इसके अलावा एक और रास्ता भी है – विशेष प्रबल अपॅचायक कैल्सियम आदि तत्वों को डाल दिया जाए। इस्पात ढलाई करते वक्त वायुमंडल में से ऑक्सीजन पुनः इस्पात में न घुसे इसके लिए कवच की व्यवस्था करनी पड़ती है।

गला हुआ इस्पात किस तरह जमता है इसका अगर बारीकी से अध्ययन करें तो हम ऑक्सीजन–निष्कासन की जरूरत को समझ पाएंगे। इस्पात जब ठोस बनना शुरू करता है तो उसमें घुला–मिला अधिकांश ऑक्सीजन बाहर निकलकर कार्बन के साथ जुड़कर CO (कार्बन मोनोक्साइड) गैस बनाता है यह CO गैस अगर इस्पात के जमने से पहले बाहर न निकल पाए तो यह छोटे–छोटे बुलबुलों के रूप में इस्पात के अंदर फंसी रह जाती हैं। ऑक्सीजन का कुछ अंश नाना प्रकार के ऑक्साइड बना डालता है जो इस्पात के अंदर ही छोटे–छोटे अपद्रव्यों का रूप ले लेते हैं। तरल इस्पात का जो हिस्सा सबसे अंत में ठोस बनता है वहीं ये सारे ऑक्साइड तथा अन्य अवांछित ठोस कण चारो तरफ इकट्ठा हो जाते हैं। साधारणतः जमें हुए इस्पात पिंड के बीचों–बीच ऊपर की तरफ ये अपद्रव्य कण मिलते हैं। इसे संपृथकन (segregation) कहते हैं। इस्पात से ऑक्सीजन पूरी तरह अलग करने पर तरल इस्पात ठंडा होकर ठोस बनते वक्त कार्बन मोनोक्साइड नहीं बना पायेगा तथा संपृथकन भी बहुत कम होगा। ऑक्सीजन विहीन इस्पात को हतस्पात कहते हैं। इस प्रकार के इस्पात में अपद्रव्य अथवा गंदगी की सफाई अच्छी तरह होती है। इसके अन्य कई प्रकार हैं मसलन (सेमी किल्ड) अर्ध–हत, रिमिंग, स्पेस्ल–किल्ड तथा बैलेंस्ड इत्यादि। इस्पात किस काम में इस्तेमाल होगा एवं उसका संघटन क्या होगा, उसी के अनुरूप इस्पात तैयार किया जाता है तथा उसका निर्धारण पहले से ही कर लेना बेहतर रहता है।

अधिक परिमाण में इस्पात बनाते हुए सल्फर पर नियंत्रण पाना कठिन होता है। धमन भट्टी से प्राप्त गले हुए लोहे के साथ ही सल्फर आता है यह सल्फर काफी कम किया जा सकता है टार्पेडोबाल्टी अथवा अन्य पद्यति से, इस्पात बनाने से पहले ही विगंधकन द्वारा। चूँकि सल्फर का इस्पात में रहना नुकसानदायक है एवं बी.ओ.एफ. पद्यति में जरूरत मुताबिक कम नहीं किया जा सकता अतः कई बार तरल इस्पात को दुबारा बाल्टे में पलटकर सोडा, मैग्नीशियम, चूना अथवा कैल्सियम की सहायता से गंधक हटाया जाता है। ये सारे पदार्थ तरल इस्पात में गंधक के साथ संयोग करके धातुमल में चले जाते हैं। फलतः इस्पात में गंधक की मात्रा 0.001 प्रतिशत से भी कम हो जाती है। इस पद्धति में विगंधकन के साथ–साथ दूसरे अवांछित तत्व भी काफी कम हो जाते हैं। दूसरी किसी खास प्रणाली की जरूरत नहीं होती।

विगंधकन, तरल इस्पात की बाल्टी में ही संपन्न किया जा सकता है। विशेष मिश्रण का महीन चूर्ण बना कर तरल इस्पात के भीतर घुसा देते हैं और साथ–साथ निष्क्रिय गैस द्वारा इस्पात को भली प्रकार विलोड़ित करते हुए ताप भी थोड़ा बढ़ा देते हैं जिससे सल्फर वियोजन का काम सही तरीके से हो जाता है कैल्सियम की मदद से सल्फर को हटाने में यह सुविधा होती है कि अगर इस्पात थोड़ा मैला रह भी जाए तो व्यवहार में इससे कोई दिक्कत नहीं आती। विगंधकन की क्रिया निर्वात कक्ष में आर्गन गैस के बुलबुलों द्वारा भी की जा सकती है।

विकार्बनन

हम लोगों ने देखा कि कन्वर्टर के ऊपर और नीचे से ऑक्सीजन तथा आर्गन गैस द्वारा इस्पात बनाने पर कार्बन की मात्रा काफी कम हो जाती है। यदि और अधिक कार्बन घटाना हो तो निर्वात पद्धति की सहायता से ऐसा संभव है।

फास्फोरस निष्कासन

साधारणतः बी.ओ.एफ. में फास्फोरस को हटाना सहज है। फिर भी अगर किसी कारण वश अधिक फास्फोरस रह जाए तो पुनः उसकी सफाई करनी पड़ती है। एक कृत्रिम धातुमल बनाते हैं जिस में चूना और ऑक्सीजन अधिक हो। परंतु बाल्टी से इस्पात ढालते कहीं पुनः फास्फोरस वापस न आ जाए इसके लिए सावधानी रखनी पड़ती है।

विगैसन (degassification)

तरल इस्पात में से N_2 एवं H_2 निकाल बाहर करने के लिए साधारणतः किसी रासायनिक अभिक्रिया की जरूरत नहीं होती, सिर्फ यांत्रिक उपाय काफी होते हैं। गले हुए इस्पात के बीच अगर निष्क्रिय आर्गन गैस भेजी जाए तो उसके बुलबुलों के साथ इस्पात--में उपस्थित सारी *नाइट्रोजन एवं हाइड्रोजन* गैस लगभग बाहर आ जाती है। हाँ, निर्वात विधि का प्रयोग ही बेहतर होता है।

निर्वात विधि

यह प्रक्रिया आजकल इस्पात प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। कारण यह है कि इस विधि के कई फायदे हैं जिससे इस्पात के गुण, कीमत एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। इस प्रणाली को बहुमुखी कहा जा सकता है। इसमें अति निम्न दाब उत्पन्न कर इस्पात की आनुषंगिक सफाई होती है। इसका मतलब विस्तार से बताते हैं :–

गला हुआ इस्पात जब जमना शुरू करता है तो कुछ गैंसे बाहर निकलती हैं परंतु काफी कुछ अटकी रह जाती हैं इससे इस्पात के गुण कम हो जाते हैं। अगर तरल इस्पात के ऊपर बाहर से निर्वात उत्पन्न किया जाए तो वायुमंडलीय दाब कम होने पर भीतर की गैसे फटाफट बाहर आने लगती हैं। सारी निर्वात विधियों का आधार यही है। इस प्रणाली में गले हुए इस्पात को किसी वायु निर्वात कक्ष में रखकर सफाई का काम होता है।

इस्पात भी अधिक साफ होता है और मैल का प्रकोप कम हो जाता है। ऑक्सीजन कम होने के कारण व्यवहार में आने वाले मँहगे इस्पात--मिश्रातु मसलन कोमियम, टंग्स्टन, वैनेडियम, मोलिबडेनम आदि धातुमल के साथ मिलकर नष्ट नहीं होते।

वैद्युतधातुमल इस्पात मिश्रातु परिष्करण (इलेक्ट्रोस्लैग रिफाइनिंग)

इस्पात को और अधिक शुद्ध और साफ करने के लिए इस्पात (इंगट) को ही दुबारा निर्वात कक्ष में गलाया जाता है। इस पद्धति में अतिरिक्त खर्च होने की वजह से छोटे–छोटे इंगट और अत्युतम गुणता का इस्पात बनाने के लिए ही इसका उपयोग किया जाता है। जैसे जेट हवाई जहाज के लैडिंग गियर के लिए प्रयुक्त इस्पात इसी पद्धति द्वारा प्राप्त होता है। इसके द्वारा सबसे अधिक निर्मल इस्पात बनता है

जिसमें गैस की मात्रा भी बहुत कम होती है। इस पद्धति में इस्पात जब दुबारा जमता है तो रवों का गठन उट–पटांग ढंग से नहीं होता। छिद्र विहीन क्रिस्टलों का गठन संभव होता है। इस सब खूबियों से इस्पात के गुणों में वृद्धि होती है।

इस प्रणाली में इच्छानुसार वैद्यतधातुमल बनाकर परिष्करण के लिए निर्धारित इस्पात पिंड और तरल इस्पात को ढक कर रखा जाता है जिससे इस्पात नीचे से लेकर ऊपर तक एक जैसा जमता है। इलैक्ट्रोड और धातुमल के बीच भारी विद्युत् प्रवाह, इस्पात पिंड को गलाने लगता है और तरल इस्पात बूँद–बूँद धातुमल के बीच से बहकर साफ होकर नीचे जमता रहता है। इस तरह नए जमे इंगट को नीचे से धीरे–धीरे बाहर निकाल लिया जाता है।

इस प्रणाली से विशेष लाभ ये हैं :–

क. एक से अधिक इलैक्ट्रोड गलाये जा सकते हैं।

ख. नये इस्पात खंड की सतह साफ तथा दोष मुक्त होती है।

ग. इस्पात में सल्फर की मात्रा 0.002 प्रतिशत तक घटायी जा सकती है।

घ. VAR प्रणाली की तुलना में और अधिक बड़े तथा भारी इंगट बना सकते हैं।

उपभोज्य विद्युत् निर्वात आर्क गलन (CEVAM)

इस प्रणाली में ई.एस.आर की तरह ही विद्युत् धातुमल में इस्पात गलाकर, इस्पात पिंड को पुनः निर्वात–कक्ष में गलाया जाता है। उसी तरह साँचे को पानी से ठंडा रखा जाता है। इस प्रणाली में चूँकि अंत तक कोई धातुमल नहीं रहता इसलिए इस्पात को दुबारा कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ती इस्पात सर्वोत्तम गुणता का प्राप्त होता है। क्योंकि बूँद–बूँद इस्पात साफ किया जाता है। कोई गैस या अपद्रव्य नहीं बचता। बस एक कमी है कि निर्वात कक्ष में मैंगनीज़ जैसी धातुएं नष्ट जाती हैं। ई.एस.आर एवं सी.इ.वी.ए. एम दोनों ही विधियां प्रचलित हैं। हाँ ई.एस.आर प्रणाली सहज ही फलीभूत होती है, अतः ग्रहण योग्य है।

इलेक्ट्रॉन पुंज गलन परिष्करण

इस प्रणाली का मूल लक्ष्य है इलेक्ट्रॉन पुंज शक्ति का, इस्पात उत्पादन में

इस्तेमाल करना। यह पुंज इतना प्रबल होता है कि इस्पात संस्पर्श में आते ही पिघलने लगता है। जहाँ से ये पुंज निकलता हैं उसे 'इलेक्ट्रॉनिक पुंज गन' कहते हैं। इस शक्ति का घनत्व 10 वाट प्रति सेंटीमीटर होता है। चूँकि इस शक्ति का नियंत्रण भली प्रकार हो सकता है, इसीलिए इस्पात बनाने का काम भी सहज हो जाता है। इस विधि द्वारा बनाया गया इस्पात गठन एवं विशुद्धता में सर्वोच्च कोटि का होता है। परंतु इसका प्रचलन अभी सीमित ही है।

इस्पात उत्पादन करते समय होने वाली समस्याओं का भरोसेमंद अनुमान एवं इलाज करना संभव हो गया है। नियंत्रण करने वाले यंत्रों द्वारा ताप, दाब, गैस तथा रासायनिक स्थिति की ठीक–ठीक जानकारी मिल जाती है जिसका समुचित समाधान किया जा सकता है। भट्टी में किस–किस प्रकार की अस्वाभाविकतायें पैदा हो सकती हैं जिनकी वजह से कन्वर्टर का परिचालन दुष्कर हो सकता है और उनका निवारण किस प्रकार किया जा सकता है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है। आजकल उन्नत किस्म के स्वचालित नियंत्रण द्वार कन्वर्टर परिचालन में हालांकि इनका सामना अब शायद ही कभी होता हैं। परंतु अपने देश के परिप्रेक्ष्य में इनकी चर्चा आवश्यक है –

क) धातुमल अधिक श्यान होने पर कई असुविधाएं पेश आती है :–

- धातुमल के बीच से ऑक्सीजन भेजना मुश्किल हो जाता है।
- ऑक्सीजन पाईप में धातुमल का शीघ्र जमा हो जाना जिससे पाईप का वजन बढ़ता है और परिचालन में कठिनाई आती है।
- कन्वर्टर के मुँह पर पर्याप्त इस्पात का जम जाना।
- जिसकी सफाई में वक्त बर्बाद होता है।
- फास्फोरस और गंधक का निष्कासन ठीक ठीक नहीं हो पाता।

इस समस्या का समाधान है कि ठीक समय पर ठीक धातुमल तैयार करना। शुरू में ही थोड़ा सिंटर डालने से धातुमल चिपचिपा नहीं रहता तथा कन्वर्टर का मुँह जाम नहीं होता इसके लिए उचित नियंत्रण–मॉडल होना चाहिए। इसके अलावा ऑक्सीजन पाइप का मुख नाली और तरल इस्पात के बीच दूरी पर्याप्त न हो अथवा तरल इस्पात

और धातुमल का आलोड़न यथेष्ट न हो तो धातुमल की तरलता (अथवा गाढ़ापन) ठीक रखना मुश्किल हो जाता है। फलतः धातुमल के साथ इस्पात की रासायनिक क्रिया भली प्रकार नहीं हो पाती। सारी अभिक्रियायें धीमी एवं अपूर्ण रह जाती हैं।

ख. उत्क्षेपण

इससे कन्वर्टर परिचालन में एक भारी बाधा उत्पन्न होती है। इसके बारे में थोड़ा विस्तार से चर्चा करना जरूरी है– पहले ही बताया गया है कि कन्वर्टर में ऑक्सीजन प्रयोग करते ही सोडा बोतल खोलने पर जो अवस्था होती है, वैसी ही, कार्बन डाईऑक्साइड के बुलबुले इस्पात ओर धातुमल के साथ धुलकर कन्वर्टर पात्र भर देते हैं। इस घोल का आयतन पात्र के आयतन से ज्यादा होने पर स्वाभाविक रूप से छलक कर बाहर निकल आता है और परिवेश गंदा कर देता है। फलतः उत्पादन में बाधा पड़ती है और उत्पादन कम हो जाता है। इस छलकाव का प्रधान कारण है–

1. पात्र आयतन और तरल इस्पात के आयतन के अनुपात का जरूरत से कम होना।
2. तरल इस्पात और धातुमल के बीच रासायनिक अभिक्रिया का तीव्र होना।
3. ऑक्सीजन पाइप की मुखनली घिस चुकी है जिसके फलस्वरूप ऑक्सीजन तरल धातु में दाब के साथ प्रवेश नहीं कर पाती एवं धातुमल में FeO की मात्रा बढ़ जाती है।
4. तरल इस्पात और ऑक्सीजन पाइप की मुखनली के बीच काफी अंतराल का होना। पाइप का मुँख इस्पात के नजदीक रहने से कार्बन निष्कासन में सुविधा होती है, नहीं तो ऑक्सीजन का धातुमल के संस्पर्श में अधिक आने पर धातुमल में FeO की मात्रा जरूरत से ज्यादा हो जाती है।
5. ऑक्सीजन के वेग को कम करने पर छलकना कम किया जा सकता है। पाइप की मुखनली साफ हो एवं ठीक–ठाक हो और ऑक्सीजन का प्रहार तरल इस्पात पर सही ढंग से होना चाहिए।

बी.ओ.एफ. प्रणाली की बाधाएं तथा उनके समाधान के उपाय नीचे सारणी में दिए गए हैं :–

संक्षेप में बी.ओ.एफ. प्रणाली की बाधाएं/दिक्कतें

	बाधाओं का क्रम	बाधाओं का परिणाम	नियंत्रण व्यवस्था
1.	ऑक्सीजन का पुनःप्रयोग	अतिरिक्त फेरोएलॉय की जरूरत, उच्चतापरोधी ईंटों का त्वरित ह्रास, उत्पादकता का ह्रास।	अच्छे चूने का प्रयोग, धमन भट्टी के साथ आए धातुमल को घटाने के लिए नियंत्रण युक्ति का प्रयोग करना
2.	छलकाव	अतिरिक्त सफाई का काम, उत्पादन में बाधा एवं नुकसान।	शीघ्र धातुमल तैयार करना, FeO का समुचित उपयोग, नियंत्रण युक्ति का प्रयोग करना।
3.	कन्वर्टर का मुँह और पाईप का जाम होना	उत्पादन में समय–हानि, मुँह के समीप स्थित उच्चतापसह ईंटों की क्षति, बार–बार मुँह एवं पाइप साफ करने में समय की बर्बादी।	ऑक्सीजन प्रयोग के आरंभ से ही अच्छा धातुमल तैयार हो, ज्यादा बड़े मुँह वाला पाइप बरता जाये। (बड़े कन्वर्टर में छः मुँह वाला पाइप ठीक रहता है)।
4.	कन्वर्टर में धमन भट्टी से धातुमल ज्यादा आना	गालक का अधिक अपव्यय, धातुमल की मात्रा में वृद्धि, अधिक ताप की जरूरत (कारण के कि अधिक चूना लगेगा)।	शुरू में ही तरल इस्पात के बाल्टे से धातुमल भलीभांति साफ किया जाए और उस बाद ही तरल इस्पात को कन्वर्टर में डाला जाए।
5.	तरल इस्पात का असामान्य व्यवहार	ऑक्सीजन का उपयोग ठीक ढंग से होने पर बार–बार ऑक्सीजन देना पड़ता है।	तरल इस्पात का रासायनिक संघटन सही–सही जान कर उसके आधार पर नियंत्रण युक्ति तैयार करना एवं प्रयोग करना।

तरल इस्पात की ढलाई

इस्पात नाना आकारों में इस्तेमाल होता है जैसे कि छड़, तार, चादर, रेल, कड़े इत्यादि। ये चीज़ें बनाने से पहले इस्पात को ठोस पिंडों में ढालना जरूरी होता है। यह काम दो तरीके से संभव है –

1. पिंड (इंगट) ढलाई
2. सतत ढलाई (Continuous Casting)

इस्पात बनना जब शुरू हुआ तो ईगट ढलाई का एक ही तरीका मालूम था। आज से लगभग एक सौ वर्ष पहले जर्मनी में सबसे पहले इस्पात की सतत ढलाई का आरंभ हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह जल्दी ही सर्वत्र फैल गया। अब यह पूरे विश्व में चालू है। लगभग 70–75 प्रतिशत ढलाई इसी पद्धति से की जाती है। उन्नत पश्चिमी देशों में तो 90–100 प्रतिशत इस्पात का उत्पादन इसी से होता है। सिर्फ कुछ अति विशिष्ट इस्पात किस्मों की ढलाई को छोड़कर बाकी सारा इस्पात सतत ढलाई से बनता है। इसकी खास वजहें निम्नलिखित हैं :–

- इस पद्धति में द्रुत उत्पादन का तरल इस्पात उत्पादन के साथ सामंजस्य रखा जा सकता है।
- उत्पादकता में वृद्धि, पिंड ढलाई की तुलना में प्रायः 8–10 प्रतिशत अधिक
- उत्पादन के क्रमशः अगले चरणों में काफी बचत

पिंड ढलाई (Ingot Casting)

इस प्रणाली में तरल इस्पात साधारणतः ज्यामितीय आकारों वाले साँचों में ढाला जाता है। साँचा चौकोर, गोल अथवा वर्गाकार हो सकता है। साँचा भीतर नीचे से ऊपर की तरफ ढालू होता है ताकि ठोस बना पिंड साँचे से सहज बाहर निकाला जा सके। तरल इस्पात को ऊपर से साँचे में डालने का ऊपरी ढलाई कहते हैं। एक एक पिंड का वजन साधारणतः 5–20 टन होता है। परंतु फोर्जिंग करने के लिए जो पिंड ढाला जाता है उसका वजन और अधिक हो सकता है। ऊपरी ढलाई पद्धति में तरल इस्पात बाल्टी से साँचे में ढाला जाता है। इतनी ऊँचाई से ढालने की वजह से साँचे के अंदर वाली सतह पर तरल इस्पात के छींटे चिपक जाते हैं जो पिंड की त्वचा पर अनेक

प्रकार के दोष उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार ढाले गए पिंड की सतह को दोष–मुक्त करने के लिए बाद में अन्य उपाय करने पड़ते हैं।

तरल इस्पात साँचों के नीचे से भी ढाला जा सकता है, इसे कहते हैं फर्श ढलाई (बाटम पोरिंग)। इससे साँचों की अंदरूनी सतह क्षतिग्रस्त नहीं होती। नीचे से ढलाई करते समय एक अथवा अधिक साँचों में एक साथ ढलाई संभव होती है। तरल इस्पात एक प्रमुख बीच वाली नाली से बहता हुआ विभिन्न साँचों में एक साथ प्रवेश करता है और धीरे–धीरे उन्हें भरता जाता है। इस प्रणाली को कई बार उर्ध्वमुखी ढलाई भी कहते हैं।

तरल इस्पात जब ठंडा होता है तो साँचे की सतह पर छोटे–छोटे रवों के रूप में जमता है जो बाद में धीरे–धीरे पिंड के अंदर की तरफ बड़े आकार के बनने लग जाते हैं। इनका आकार इस बात पर निर्भर करता है कि इस्पात की सतह से ऊष्मा कितनी शीघ्रता से बाहर निकलती है तथा इस्पात अंदर की तरफ किस गति से जमना चालू रहता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि साँचा कितना भरा हुआ और कितना भारी है। साँचे का आमाप, रासायनिक विश्लेषण, सतह का ताप, इस्पात ढलाई का ताप इत्यादि अन्य कारक भी रवों के आकार पर असर डालते हैं। पिंड जब पूरी तरह जम जाता है तब उसका ऊपर वाला हिस्सा (जो सबसे बाद में जमता है) सिकुड़ जाता है और कुछ जगह खाली हो जाती है जिसे संकुचन कोटर (Shrinkage cavity) कहते हैं। इस हिस्से का ज्यादा भाग काम के लायक नहीं होता। इस्पात का बेल्लन करते हुए इसे काट कर अलग कर दिया जाता है। पिंड में, यह खाली जगह कम बने इसके लिए साँचे के ऊपर तप्त शीर्ष का प्रयोग किया जाता है तथा संकुचन कोटर को इसी तप्त शीर्ष के अंदर सीमित रखा जाता है। हाँ, पिंड के ठीक बीचों–बीच फिर भी, किसी–किसी जगह थोड़ा–बहुत सा खालीपन रह सकता है जो विशेष नुकसान नहीं करता। इसका रायायनिक संघटन इस तरह का रखा जाता है ताकि इस्पात को अधिक समय तक तरल अवस्था में रखा जा सके और जरूरत हो तो ऊपर से अतिरिक्त इस्पात ढाला जा सके।

सतत संचकन

इस्पात तैयार करने की पद्धति में उन्नति के साथ–साथ उत्पादकता और उत्पादन की गति बढ़ती रही। उसके साथ अनुरूप परवर्ती चरणों की उन्नति भी जरूरी

हो गई। साँचों में ढलाई कर इस्पात तैयार करने की गति के साथ कदम मिलाकर चलना कठिन होने लगा तो सतत संचकन का आविष्कार हुआ। असीमित साँचे में इस्पात, ढलाई कर उत्पादन और लब्धि दोनों बढ़ाना संभव हो गया। इस तरह की ढलाई करने में तरल इस्पात, साँचे में समान रूप से जमता है जिससे रेणु (grains) समान प्रकृति के बनते हैं और इस्पात भी उच्च गुणता का प्राप्त होता है? सतत संचकन में उत्पादन के प्रमुख चरण इस प्रकार हैं :

- पहले तरल इस्पात को बाल्टे से एक तापनिरोधक आधार (टंडिश) में ढालना
- वहाँ से ढलाई करने वाले यंत्र में स्थित ताँबे के साँचे में ढालना (यह साँचा लगातार पानी से ठंडा रखा जाता है, इस्पात इसी का आकार ग्रहण करता है)।
- ढलाई शुरू करने से पहले साँचे का निचला मुँह एक साधारण इस्पात के टुकड़े से बंद करना ताकि साँचा तरल इस्पात से भरा जा सके।
- जब सही मात्रा में तरल इस्पात साँचे में आने लगे तो साँचे को ऊपर–नीचे उठाना–गिराना। गर्म लाल इस्पात की सतह जब ठंडी होकर सख्त हो जाती है तो आल को साँचे से खींचकर बाहर निकाल लिया जाता है – पहले साँचे का निचला मुँह इस्पात के टुकड़े से बंद कर दिया जाता है तथा बाद में साँचे के नीचे स्थित (ड्राइविंग रोल) घुमाने वाले चक्कों अथवा स्वचालित बेलनों की सहायता से (इस समय आल की बाहरी सतह ही सख्त अवस्था में होती है परंतु भीतरी हिस्सा नर्म होता है) आल आगे बढ़ाया जाता है।
- नीचे चले आ रहे आल को चारों तरफ पानी के फव्वारों से ठंडा करना और उसे बेलनों के बीच से ठीक–ठीक चलाना ताकि आल टूटे नहीं।
- इस्पात जम कर सख्त होने पर आल को जरूरत के हिसाब से काट दिया जाता है।

आल के आकार और संख्या, ढलाई की गति के अनुसार बढ़ाई–घटाई जाती है। सतत ढलाई की गति 0.6–3.5 मी/मिनट तक लाना ब्लूम/बिलेट के क्षेत्र में संभव हो पाया है। हाँ, यह बहुत अधिक निर्भर करता है आल के आकार और आयतन पर।

इसी पद्धति की खास बातें संक्षेप में निम्नलिखित हैं –

क. घूर्णी लैडल के ऊपर से दो बाल्टियों की मदद से आनुक्रमिक संचकन और संयुक्त संचकन किया जाता है।

ख. पहले बाल्टी से विशेष आधार (टंडिश) में तथा बाद में वहीं से साँचे में ढलाई के वक्त इस्पात–प्रवाह को वायुमंडल के संपर्क से बचाने के लिए नाइट्रोजन अथवा आर्गन गैस की सहायता ली जाती है ताकि इस्पात पुनः ऑक्सीजन से संयोग न करें।

ग. दोलायमान साँचों में विशेष गालक डालकर आल की सतह कोमल रखी जाती है।

घ. साँचों में तरल इस्पात की उच्चता (बोल्डलेवल) एवं ताप दोनों पर नियंत्रण रखा जाता है।

ड. साँचे में लगातार विद्युतीय विलोड़न का प्रबंध रखने पर आल की सतह अच्छी रहती है। यह व्यवस्था रहने पर आल का गठन भीतर तक बेहतर रहता है।

च. आजकल प्रायः हर किस्म का इस्पात सतत ढलाई प्रणाली से ही ढाला जाता है। इसका मुख्य कारण है इस्पात के आनुषंगिक परिशोधन की व्यवस्था का होना, जिसके फलस्वरूप इच्छानुसार अनुकूल ऑक्सीजन एवं गैस निष्कासन किया जाता है।

सतत संचकन के प्ररूप

यह पद्धति पहले जब आरंभ हुई तो ढलाई करने वाली मशीन सीधी थी और आल सहजतापूर्वक ऊपर से नीचे उतर सकती थी, बिना कोई दबाव बनाए। (वर्टिकल कास्टर) बाद में, धनुषाकार अथवा वक्रीय अथवा त्रिज्यागत मशीनें बनने लगीं। जिससे ढलाई में कोई असुविधा नहीं हुई और मशीन की ऊँचाई भी काफी कम की जा सकी। आजकल क्रमशः समतल मशीनें बनने लगी हैं। जंग–निरोधक इस्पात के क्षेत्र में यह प्रथा चालू हो गई है।

सतत ढलाई पर अभी भी काफी शोध हो रहा है। कोशिश की जा रही है कि तरल इस्पात को सीधे ही लगभग वांछित आकार में ढाल दिया जाये (नेट शेष कास्टिंग) ताकि बाद में कुछ ही बेलनों की मदद से बाजार की माँग के अनुसार माल तैयार किया

जा सके। पतली चादरें ढलाई करने का काम काफी हद तक इस पद्धति द्वारा संभव हो गया है। वर्गाकार कड़ा एवं रेल के आकारों में इस्पात की ढलाई पहले ही शुरू हो गई है। इनके लिए अब बीच के कई बेलनों की जरूरत नहीं रही। इस पद्धति में और भी उन्नत किस्म की तकनीक का उपयोग हो रहा है। ढलाई के वक्त इस्पात इतना नरम होता है कि उसे कोई भी आकार दिया जा सकता है। कोशिशें चल रही हैं कि इसी तरह हर जरूरत की चीज किसी भी आकार में ढाली जा सके ताकि ढलाई और बेल्लन का कार्य साथ साथ ही हो जाए।

टिप्पणी :– कुछ समय पहले जर्मनी के क्रेफिड इस्पात कारखाने में स्टेनलेस स्टील की पतली स्ट्रिप सीधे तरल इस्पात से बनाई गई। इस तरह की व्यावसायिक उत्पादन प्रणाली का रेखाचित्र दिखाया गया है। वर्तमान में मिश्रातु-स्ट्रिप का बेलन द्वारा ढलाई उत्पादन एक युगांतरकारी घटना है।

इस तरह ढलाई के साथ बेलन (रोलिंग) जोड़ कर बनाई गई सतत संचकन और रूपण की तकनीक कंटीनुअस कास्टिंग एंडशेपिंग कहलाती है। तरल इस्पात से सीधा उपयोगी तैयार-उत्पाद बनाना एक युगांतरकारी घटना कही जा सकती है। इसके द्वारा उत्पादन त्वरित गति से होगा, ऊर्जा की खपत काफी कम होगी तथा कारखाना स्थापित करने में कम पूंजी लागत की आवश्यकता होगी। बाजार में इस्पात की कीमत कम होगी तो ज्यादा लोग खरीद पाएंगे जिससे देश में इस्पात की खपत बढ़ेगी।

स्वचालित प्रणाली

सतत ढलाई के अंतर्गत प्रत्येक प्रणाली एवं उप–प्रणाली के विभिन्न प्राचल (parameter) स्वचालित यंत्रों की सहायता से निरंतर नियंत्रित किए जाते हैं और किसी विघ्न के घटने की सूचना पहले ही मिल जाती है। जरूरी संकेत मसलन बाल्टी एवं साँचे के अंदर तरल इस्पात का ताप, ढलाई की गति, आल का ताप आदि के बीच एक समन्वय रखना संभव है।

इस प्रकार के नियंत्रण द्वारा :

क. सीधे तौर पर गर्म ब्लूम, विलेट एवं स्लैब के रूपण (shaping) का काम किया जा सकता है एवं उत्पादन–समय में कटौती की जा सकती है। सतत ढलाई

द्वारा प्राप्त माल की सतह इतनी साफ होती है कि बिना कोई निरीक्षण किए सीधे उनका बेल्लन किया जा सकता है।

ख. बाजार की माँग के हिसाब से बिल्कुल उचित माप का माल तैयार किया जाता है।

ग. लब्धि में वृद्धि होती है कारण यह कि सतह सफाई के लिए स्कार्फिंग की जरूरत नहीं पड़ती और न कोई रद्दी निकलती है।

घ. कुल मिलाकर उत्पादन का समय कम हो जाता है।

आजकल इस्पात उद्योग में बाजार की माँग के अनुसार ग्राहक–उन्मुखी समग्र नियंत्रक प्रणाली का उपयोग किया जाता है, उन्नत किस्म के मॉडल बनाकर इस्पात की गुणता एवं स्ट्रिप के यांत्रिक गुणों का पूर्वाभास प्राप्त किया जाता है।

★★★

अध्याय 4

इस्पात का रूपांतरण

साधारण मिट्टी के ढेले को काम के लायक बनाने के लिये उसे कुम्हार के चाक पर जरूरी आकार दिया जाता है, फिर उसे आग में पकाया जाता है और अंत में रंग पालिश चढ़ा कर उपयुक्त बनाया जाता है। इस्पात को भी ढलाई कर, हथोड़े से–पीट कर एवं परिसज्जन द्वारा व्यवहार लायक बनाना पड़ता है। इसके साथ ही ग्राहक की जरूरत के मुताबिक इस्पात की गुणता पर भी नजर रखनी पड़ती है। इस्पात उद्योग में सर्वत्र ही इस सब की व्यवस्था रहती है। इस संपूर्ण प्रणाली को हमने इस्पात रूपण की संज्ञा दी है। इस रूपण के लिए विभिन्न उपाय किए जा सकते हैं घन ताड़न (हैमरिंग), दाबन (प्रेसिंग), बेल्लन (रोलिंग), अथवा उत्सारण (एक्स्ट्रूजन) इत्यादि। चाहे जिस भी उपाय से रूपण किया जाए, इस्पात को सबसे पहले तरल अवस्था से पिंड–ढलाई अथवा सतत ढलाई कर ठोस पिंड (इंगट) अथवा ब्लूम/स्लैब के आकार में लाना पड़ता है। पिंड–ढलाई के क्षेत्र में पिंड को दुबारा गर्म कर प्राथमिक बेलनों की सहायता से ब्लूम, बिलेट या स्लैब के आकार में परिणत किया जाता है। तत्पश्चात्, जरूरत के मुताबिक अनेक चरणों में रूपण का काम पूरा होता है। मसलन –

क. ब्लूम, बिलेट अथवा स्लैब की सतह का निरीक्षण तथा स्कार्फिंग, ग्राईडिंग आदि के द्वारा परिसज्जन।

ख. बेलन की मदद से जरूरी आकार देना जैसा वर्गाकार, छड़, बार, चादर, कड़ा इत्यादि।

ग. तैयार माल का ग्राहक की मांग मुताबिक संस्करण जैसा लंबे माल को सीधा करना, चादरों को समतल करना तथा माप में काटना इत्यादि।

घ. गुणगत परिवर्तनों के लिए जरूरी उष्मोपचार जिसका साधारणतः मिश्रातु अथवा विशिष्ट इस्पात के लिए प्रयोग होता है।

ङ. गर्म बेलन पद्धति द्वारा अगर तैयार माल व्यवहारिक आकार में नहीं आ पाता तो पुनः उसे अतप्त बेलन पद्धति द्वारा बेल कर तैयार किया जाता है, जैसे पतली चादरें। अतप्त अवस्था में पतली छड़ को खींचकर तार बनाई जाती है अथवा चादर को गोल मोड़ कर उसकी दोनों किनारियाँ एक साथ जोड़ कर बेल्डिंग करने पर पाईप बनाये जाते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि अतप्त अवस्था में इस्पात का कर्मण करें तो उसका उष्मोपचार जरूरी हो जाता है। किनारी जोड़ कर वेल्डिंग करने पर भी यह जरूरी है।

च. कई बार इस्पात के पृष्ठ को बचाने के लिए अन्य किसी धातु अथवा पदार्थ का लेप चढ़ाने की जरूरत होती है जैसे गैल्वेनाइजिंग (जस्ता चढ़ाकर), टिनिंग (टिन धातु चढ़ाकर), क्रोमाइजिंग (क्रोमियम का लेप चढ़ाकर), पेंटिंग (पेंट चढ़ाकर) इत्यादि।

इन सारे चरणों के अलावा भी ग्राहक की माँग के अनुसार अन्य तकनीक की भी जरूरत पड़ती है। जिनका विवरण यहाँ नहीं किया जाएगा।

विरूपण (deformation)

इस्पात के रूपण का विस्तृत विवरण देने के पहले इस्पात के विरूपण के संबंध में कुछ बताना जरूरी है। किसी धातु अथवा मिश्रातु पर सीधा दबाव डालकर विकृत करने को विरूपण करते हैं। बाहरी दबाव द्वारा विकृत आकार स्थायी तब ही हो सकता है जब वह उस खास ताप पर घटित हुआ हो जब धातु के रेणु, बेल्लन करते समय स्थाई रूप से फिसले हों। धातु के इसी स्थायी तौर पर विकृत होने के गुण का लाभ बेलन मिलों में धातु को विभिन्न आकार देने में किया जाता है। (इस्पात परिचय प्रथम भाग पृष्ठ 67 द्रष्टव्य)।

सब धातुओं की तरह ही इस्पात के क्रिस्टल भी एक निश्चित यूनिट में एक क्रम में व्यवस्थित रहते हैं। जब बाहरी दबाव की वजह से एक स्तर दूसरे के ऊपर

सुविधाजनक फिसलन पथ पर सरकते हैं तभी स्थाई रूप से इस्पात का प्रारंभिक आकार विकृत हो जाता है। यह फिसलना जारी रहता है जब तक कि पथ में कोई रुकावट न आ जाए। बाद में, इस्पात के रेणु (ग्रेन) में भी परिवर्तन होता है जिसके फलस्वरूप पदार्थगत और प्रायोगिक गुणता भी बदल जाती है। इस अवस्था को कर्म कठोरण (वर्क हार्डनिंग) कहते हैं। रेणुओं की पूर्वावस्था को पुनःक्रिस्टलन अथवा रेणुओं का पुनर्गठन कहते हैं। इस्पात में इस प्रकार का विरूपण सहज होता है क्योंकि निर्धारित उच्च ताप हारा इस्पात में पुनगर्ठन का काम भी साथ–साथ होता रहता है। अतः किसी प्रकार का कर्म कठोरण नहीं होता। निम्न ताप पर (जहाँ रेणुओं का पुनर्गठन संभव नहीं होता) विकृत करने को अतप्त विरूपण कहते हैं (कोल्ड डिफार्मेशन)। इस्पात को उच्च ताप पर विरूपित करने के लिए 800–1150 के बीच अथवा इससे ऊपर जाना पड़ता है। 800 डिग्री सेल्सियस के नीचे रेणुओं का पुनर्गठन इस्पात में नहीं के बराबर होता है।

इस्पात बेल्लन (रोलिंग)

बेल्लन प्रक्रम द्वारा इस्पात का विरूपण कई चरणों में अथवा सतत रूप से किया जा सकता है। इस प्रक्रम में गर्म इस्पात के टुकड़े को दो विपरीत दिशा में घूर्णन करने वाले बेलनों के बीच दबाकर किया जाता है। यह काम तीन प्रकार से हो सकती है –

क. क्षैतिज बेल्लन

ख. ऊर्ध्व बेल्लन

ग. बेल्लन

क्षैतिज बेल्लन

इस विधि में गर्म इस्पात खंडक (बेलनीय माल) को अक्ष रेखा के समानांतर दो बेलनों के बीच दबाकर गुजारा जाता है प्रायः सभी आकार के लंबे माल को इस पद्धति से बेल्लित किया जाता है। दो बेलनों के बीच अंतराल को बेल्लन अंतराल (रोल गैप) कहा जाता है। इस अंतराल का घेरा ही विकृति का आकार बनता है। इस्पात खंडक की चौड़ाई का हिस्सा बेलनों के संपर्क में आता है। उसे संपर्कवलय (कटैक्ट आर्क) कहते हैं।

जब बेलन संयंत्र गर्म इस्पात खंडक को दो बेलनों के बीच कसकर दबाता है अर्थात दबोचता है इस स्थिति को दशावस्था (बाइट कंडीशन) कहते हैं। तब सामने से इस्पात खंडक खींचा जाने लगता है और आकृति गठन का काम शुरु हो जाता है। इस प्रकार अगर दबोचा न जाए तो इस्पात खंडक का विरूपण संभव नहीं होगा। ऐसे समय दोनों बेलन समान गति से परस्पर विपरीत दिशा में घूमते हैं एवं इस्पात खंडक की लंबाई सामने बढ़ती जाती है। दबाव में रहने के कारण इस्पात खंडक जब बेलनों के दूसरी तरफ से निकलता है तो उसकी मोटाई कम होती है। बेलन के दाब से इस्पात का विरूपण हो जाता है। ध्यान रहे कि बेलनों के बीच घुसने और निकलने के दौरान आकार बदलने के बावजूद इस्पात खंडक के समग्र आयतन में कोई परिवर्तन नहीं होता। लंबा माल तैयार करते वक्त इस्पात खंडक चारों ओर से आकार में छोटा होता रहता है परंतु लंबाई कई गुणा बढ़ती जाती है।

इस्पात खंडक के आकार को छोटा करने के लिए विभिन्न प्रकार के पारण युक्त बेलनों का प्रयोग किया जाता है। लंबे माल के बेलन के लिए चपटा अथवा चादर जैसा माल तैयार करते समय इस्पात खंडक पतला होने के साथ–साथ चौड़ाई में भी थोड़ा–सा बढ़ जाता है, कारण कि चौड़ाई वाली दिशा से कोई दाब नहीं दिया जाता। चपटा माल बेलने के लिए दो समतल बेलनों के बीच फाँक क्रमशः कम किया जाता है जिससे इस्पात धीरे–धीरे आकार में पतला होता रहता है। इस चित्र में प्रक्रिया का ज्यामितीय विश्लेषण दिया गया – अर्थात् मोटाई में ह्रास, आयतन में ह्रास, चौड़ाई तथा मोटाई का अनुपात, चौड़ाई एवं संसर्ग बेलन का अनुपात, और बेलन दाब इत्यादि। इस्पात खंडक की परिधि में आवश्यक प्रतिबंध, खंड का ताप, सतह की कठोरता, पेषण शक्ति, बेलन की सतह की कठोरता एवं विकृति रोधक शक्ति आदि हैं।

ऊर्ध्व बेल्लन

इस प्रक्रम में इस्पात खंडक को उसके अक्ष पर 90 डिग्री घुमाकर दुबारा लंबाई की दिशा में बेला जाता है। वृत्ताकार माल बनाने के लिए चक्राकार बेलन (रिंग रोलिंग) का प्रयोग होता है।

तिर्यक् बेल्लन (स्क्यू रोलिंग)

इस प्रक्रम में माल को उसके अक्ष एवं लम्बाई के बराबर परिधि के चारों तरफ से

दाब रखकर घुमाते हुए बेल्लन किया जाता है। इस प्रयोग से जोड़ सीवनहीन पाईप एवं ट्यूब बनाये जाते हैं।

चादर बेल्लन

साधारणतः समतल और सरल बेलन द्वारा ही चादर तैयार किए जाते हैं। यहाँ इस्पात बिना बाधा के लंबाई और चौड़ाई दोनों दिशाओं में फैलाया जाता है। हाँ, चौड़ाई की तरफ फैलाव कम ही रहता है। इस प्रणाली में बेलन के निजी स्वरूप में अत्यन्त परिवर्तन होने की वजह से चादर हर जगह समान माप की नहीं मिलती। बेलनों में ये परिवर्तन नाना कारणों से हो सकते हैं – मसलन

- रोल स्प्रिंग अथवा बेलनों का पृष्ठक बेलन (बैक–अप रोल) की सहायता से यह विकृति कुछ हद तक दूर की जा सकती है।
- माल के विरूपण करने वाले बेलने की प्रत्यास्थता (इलास्टीसिटी) की वजह से बेलन में विकृति उत्पन्न होती है।
- बेलन की नमनीयता की वजह से बेलन द्वारा डाला जा रहा दाब हर जगह एक समान नहीं रह पाता।

इस बेलन–व्यवधान के परिवर्तन के साथ–साथ बेलनों के ऊपर दबाव, ताप एवं घर्षण के फलस्वरूप परिवर्तन और बढ़ जाता है। इस सब के समेकित प्रभाव के निवारण हेतु बेलन के आकार में कुछ बदलाव आ जाते हैं जैसे अवतल (कान्केव), बेलनाकार (सिलींड्रीकल), उत्तल (कान्वेक्स) इत्यादि आकार के बेलन व्यवहार में लाए जा रहे हैं। इन सबके अलावा भी बेलन व्यवधान ठीक करने के लिए भी वैद्युत यांत्रिक (इलेक्ट्रो–मेकेनिकल) अथवा हाइड्रोलिक गैप कंट्रोल का प्रयोग किया जाता है। पृष्ठक बेलनों का प्रचलन काफी पहले से ही था। आजकल सतत परिवर्ती क्राउन (कंटीनुअस वेरेयेबल क्राउन) वाले बेलनों का प्रयोग भी बढ़ रहा है। इस युक्ति के द्वारा काफी हद तक समस्या का समाधान संभव है । इस पद्धति में जो बेल्लन दो इस्पात खंडकों के साथ प्रत्यक्ष रूप से काम करते हैं उनके आकार अंग्रेजी के एस अक्षर की तरह बनाए जाते हैं। ये बेलन के परस्पर विपरीत दिशा में स्थान परिवर्तन करते हैं जिससे बेलन के उभार (कैंबर) में लगातार बदलाव आता रहता है। चादर बेल्लन करते समय प्रधान लक्ष्य होता है चादर की हर जगह बराबर मोटाई रखना। चादर के विभिन्न हिस्सों मे

मोटाई अलग–अलग होने पर उससे तैयार माल बनाने में बड़ी असुविधा होती है। इसलिए बेलन की वक्रता पर खास नज़र रखना जरूरी है। नियंत्रण करने के अन्य यंत्रों जैसे कि प्रतिदाबी बेलन, सतत परिवर्ती–क्राउन प्रक्रम इत्यादि प्रयोग कर लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

खाँचेदार बेलनों का प्रयोग (सेक्शन रोलिंग)

बेलनों में काटे गये खाँचों के बीच से गर्म इस्पात के गुजरने से इस्पात खंडक वैसा ही रूप ले लेता है। यह खाँचा (छिद्र) संमकेंद्रित और एक जैसा काटा जाता है। खाँचों के आकार इस प्रकार बनाए गए एवं क्रमवार सजाये गये हैं कि नरम इस्पात इनके अंदर से गुजरे तो सहज ही ये आकार ग्रहण कर दूसरी तरफ से निकल आये। साधारणतः बेलन में ये आकार इस प्रकार के होते हैं ताकि खाँचे, बड़े पहले, छोटे बाद में के क्रमानुसार हों। कई एक बेलन एक के बाद इस तरह रखे जाते हैं कि भिन्न–भिन्न आमाप और आकार के माल तैयार हो सकें। हाँ, जटिल आकार बनाने हों तो बहुत ही हिसाब से बेलन में खाँचे काटे जाते हैं जिससे नर्म इस्पात धीरे–धीरे जरूरत मुताबिक आकार ले सकें। उचित ताप पर आकार ग्रहण करने से इस्पात में कोई गुणगत परिवर्तन नहीं होता। गर्म इस्पात किस प्रकार एवं कितना खाँचे के भीतर जाने से किस प्रकार का आकार बनेगा, इसकी परिकल्पना हेतु विशेष दक्षता की जरूरत होती है। इसे "रोल पास डिजाइन" कहते हैं। हर इस्पात संयंत्र में जहाँ बेलनों की सहायता से इस्पात का रूपण किया जाता है, वहाँ कम से कम दक्ष, रोल पास डिजाइनर की बहुत ही जरूरत होती है।

बेल्लित माल

बेलन प्रणाली से मुख्यतः दो तरह का माल बनता है :–

1. अर्ध–निर्मित माल (semi finished product)
2. तैयार माल (finished product)

पहले ही बताया जा चुका है कि गले हुए इस्पात को पिंड आकार में ढाल कर, बाद में कठोर पिंड को पुनः गर्म कर ब्लूमिंग और बिलेट मिल अथवा सतत मिल में बेल्लित किया जाता है जिससे ब्लूम, बिलेट अथवा स्लैब बनाए जाते हैं। साथ ही अगर

गले हुए इस्पात की सतत ढलाई की जाये तो इच्छानुसार ब्लूम, बिलेट अथवा स्लैब सीधे ढाले जा सकते हैं। ये ब्लूम, बिलेट एवं स्लैब अर्ध–निर्मित इस्पात समूह में हैं। क्योंकि सीधे तौर पर उपयोगी तैयार इस्पात बनाने के लिए इनको पुनःकिसी न किसी रूपण पद्धति के माध्यम से गुजरना होगा।

कौन सा माल तैयार करना है अथवा किस माल का रूपायण आरंभ करना है इस पर ही बेलन मिल के विभिन्न प्ररूप निर्भर करते हैं। मसलन इस्पात पिंड से अर्ध–निर्मित माल बनाने के लिये जो बेलन मिल लगाई जाती है वह प्राथमिक बेलन मिल कहलाती है। अर्ध–निर्मित माल से अंतिम व्यवहार–योग्य माल बनाने के लिये जो समस्त बेलन मिले काम में आती हैं उन्हें द्वितीयक अथवा फिनिशिंग मिल कहते हैं। इन मिलों से सीधा व्यवहार योग्य तैयार माल परिसज्जित इस्पात (finished steel) कहलाता हैं।

इस समस्त तैयार माल को दो भागों में बाँटा जा सकता है :–

क. लंबा माल

ख. चपटा माल अर्थात् चादर–जैसा माल।

लंबा माल

लंबे माल में शामिल हैं :–

- बार, छड़ जो साधारणतः सीमेंट के साथ निर्माण कार्य में काम आते हैं।
- सेक्शन जैसे बीम, चैनेल, ऐंगल, टी, रेल इत्यादि जिनका उपयोग इंजीनियरी कामों और कारखाना निर्माण में किया जाता है।
- वायर रॉड सरिया– साधारणतः घर बनाने तथा दूसरे सीमेंट के साथ ढलाई के कामों में आता है।
- रेल अनुषंगी उत्पाद जैसे फिशप्लेट, स्लीपर इत्यादि
- शीट पाइलिंग सेक्शन – अनेक प्रकार की नींव तैयार करने में उपयोगी।

सेक्शन माल को दो विभागों में रखा जा सकता है – हल्का और भारी। हल्के सेक्शन रॉड एवं बार मिलों में तैयार किए जाते हैं। साधारणतः आम सेक्शन मिलों में मध्यम माप के सेक्शन तैयार होते हैं। जिन्हें हल्का भी नहीं कहा जा सकता और न ज्यादा भारी। भारी सेक्शन, भारी सेक्शन मिलों में तैयार किए जाते हैं। ये मिलें रेलवे

लाइनें भी तैयार कर लेती हैं। बार और रॉड मिल के अंतिम बेलनों का समूह अलग कर देने पर एक पंक्ति से वायर रॉड और दूसरी पंक्ति से सीधा लंबा बार एवं रॉड तैयार हो सकता है। वायर रॉड मिल पूरी तरह अलग भी रह सकता है।

वायर रॉड अथवा पतले छड़ साधारणतः बेलन के अंत में कुंडली आकार में तह किये जाते हैं ताकि बेलने की गति बढ़ाई जा सके तथा तैयार माल तरतीब से रखा जा सके। यह छड़ ज्यादा मोटा नहीं होता। साधारणतः 6 मिली मीटर से 20 मिलीमीटर तक गर्म अवस्था में ही इसका कुंडलन किया जाता है। आजकल गर्म वायर रॉड को नाना प्रक्रियाओं की सहायता से ठंडा कर इसमें गुणगत परिवर्तन लाये जा सकते हैं। ठंडा करने के बाद अलग से किसी ऊष्मा–उपचार की आवश्यकता नहीं रहती। तार भी इसी वायर रोड से तैयार होता हैं। छड़ को ठंड़ी अवस्था में खूँटी के बीच से खींचकर क्रमशः इसका व्यास कम करके तार तैयार होता है। जरूरत पड़ने पर ऊष्मा–उपचार का प्रयोग किया जाता है। लंबा तथा चपटा इस्पात माल को नाना रूप श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

चपटा माल

यह चादर किस्म का इस्पात, प्लेट मिल अथवा तप्त स्ट्रिप मिलों में तैयार किया जाता है। इसके अलावा दूसरी मिल भी हैं जैसे चादरी मिल, स्टेकल मिल, स्केल्प मिल (ट्यूब तैयार करने के लिए चादर) इत्यादि। इस्पात का चपटा माल ज्यादातर मोटाई और चौड़ाई के हिसाब से विभिन्न नामों से बिक्री होता है –

क. मोटी चादर अथवा प्लेट (5 मि.मी. तथा उससे अधिक मोटाई, समतल चादर)

ख. पतली चादर अथवा शीट (मोटाई 5 मि.मी. से कम, समतल चादर)

ग. चौड़ी चादर अथवा वाइड फ्लैट – गर्म अवस्था में बेलन कर साधारणतः 1. 6 मि.मी. (आजकल 1 मि.मी. तक संभव है) से पतली चादर तैयार की जाती है। ऐसा करने के लिए चादर का अतप्त अवस्था में पुनः बेल्लन करना पड़ता है। पतली चादर (6 से 20 मि.मी.) ज्यादातर कुंडल आकार में ही बनती एवं उसको बिक्री होती है। इससे बाद में होने वाले रूपण सरल हो जाते हैं। समतल चादर के रूप से बिक्री करने के लिए कुंडल को पुनः खोलकर मशीन की मदद से समतल कर मापानुसार काट कर बाजार में भेजा जाता है।

चौड़ाई के हिसाब से बिक्री करनी हो तो कुंडल को पुनः खोलकर, मशीन की मदद से समतल कर, माप में काटकर बाजार में भेजा जाता है। चौड़ाई के हिसाब से कुंडलियां तीन श्रेणियों में रखी जा सकती हैं –

- पतली स्ट्रिप
- मध्यम स्ट्रिप
- चौड़ी स्ट्रिप

इस श्रेणी का इस्पात कई कामों में लगता है जैसे कि पाईप, ट्यूब और कई तरह के यंत्रों के साजो–सामान बनाने में। इस्पात कारखाने की नज़र से यह तैयार माल में गिना जाता है जब कि पाइप–ट्यूब तैयार के हिसाब से यह अर्ध–निर्मित माल है।

चौड़ी चादर तैयार करते समय चादर के चारों किनारे बेल्लित किये जाते हैं। साधारण इस्पात की चादर में यह नहीं किया जाता। इसी वजह से इस माल को पृथक श्रेणी में रखा गया है। ये चौड़ाई में 150 मिलीमीटर से 1200 मिलीमीटर तक तथा मोटाई में 3 मि.मी. से अधिक होते हैं। भाप वाले बॉयलर तैयार करने में इन चादरों की जरूरत होती है।

बेल्लन मिल (रोलिंग मिल)

इस्पात परिचय भाग – 1 में बताया गया है रोलिंग पद्धति कैसे काम करती है। रोलिंग मिल कहने से एक ऐसी कर्मशाला का बोध होता है जहाँ इस्पात खंडक को इच्छानुसार आकार में रूप दिया जा सकता है। इस कर्मशाला में इस्पात खंडकों को गर्म करने वाली चूल्ही/भट्टी, बेलनों की पंक्तियाँ अथवा रोल ट्रेन तथा आनुषंगिक नाना यंत्र होते हैं। बांग्ला में ऐसी कर्मशाला को बेलन शाला कहा जा सकता है।

ज्यादातर गर्म बेलन मिल में इस्पात खंडकों को गर्म करने के लिए उपयुक्त पुनः तापन (रीहिटिंग फर्नेस), नर्म इस्पात की पृष्ठ से शल्क (पपड़ी) साफ करने का इंतज़ाम, बेलनों की पूरी कतार, बेलनों के अंत में बेल्लित माल को ठंडा करने की व्यवस्था इत्यादि रहती है।

दूसरी तरफ जहाँ अतप्त बेलन प्रक्रमा (कोल्ड रोलिंग मिल) का प्रयोग होता है, वहां भट्टी की जरूरत नहीं होती परंतु दूसरी सुविधाओं की दरकार होती है मसलनः

1. अम्लोपचार (pickling) के द्वारा माल की सतह साफ करने की व्यवस्था।

2. आवश्यकतानुरूप बेलनों की कतार
3. ऊष्मा–उपचार की व्यवस्था
4. त्वक् पारण मिल (स्किन पास मिल)
5. फिनीशिंग लाइन अथवा परिसज्जन व्यवस्था – कटाई–छँटाई की मशीन एवं जरूरत मुताबिक पैकिंग का जुगाड़। पुरानी प्रथानुसार जहाँ पिंड ढलाई का प्रचलन है, वहाँ तरल इस्पात को पिंडाकार में ढलाई के लिए पिंडित खंडक को दुबारा किसी भट्टी में गर्म किया जाता है। कई बार पूरी तरह ठंडा हो चुके पिंड को नये सिरे से गर्म करना पड़ता है। इस काम के लिए बैच फर्नेस का इस्तेमाल किया जाता है ताकि एक बार में एक समूह का माल गर्म हो जाए। उदाहरण स्वरूप –
   क. समतापन गर्त (सोकिंग पिट) एक ऐसी भट्टी है जिसमें ईंगट या पिंड संपूर्ण रूप से उपयुक्त ताप पर ताप–सिक्त किया जाता है।
   ख. बोगी हार्थ फर्नेस जहाँ पिंड लादकर, गाड़ी समेत भट्टी में धकेल कर गर्म किये जाते हैं।

पिंडों को बेल्लित कर जो अर्ध–निर्मित माल मिलता है जैसे कि ब्लूम, बिलट अथवा स्लैब उन्हें कई बार पूरा ठंडा कर दिया जाता है, माल की सतह को भली प्रकार जाँचा जाता है तथा जरूरत मुताबिक दोष–मुक्त करने के बाद उन्हें भट्टी में डाले जाने के लिए बेलन योग्य ताप तक गर्म किया जाता हैं। यह काम कई किस्म की भट्टियों में किया जाता है। जिसमें लगातार घान डाला जाए ऐसी भट्टियाँ कई प्रकार की होती हैं :

- अपकर्षी भट्टी (पुशर टाईप) जिसे भट्टी में धक्का देकर माल आगे खिसकाया जाता है। लंबे स्लैब, बिलेट–ब्लूम किस्म का माल इस प्रकार की भट्टियों में गर्म होता है।
- चल भट्टी (वाकिंग बीम) जिस भट्टी में माल चौड़ी बीम के ऊपर सीढ़ी पर सीढ़ी आगे बढ़ता है। इनमें ज्यादातर बिलट अथवा ब्लूम गर्म किये जाते हैं।
- घूर्णी भट्टी (रोलर हार्थ) इसमें हल्का माल जैसे चादर, प्लेट इत्यादि गर्म किये जाते हैं।

इन सब पद्धतियों का मूल लक्ष्य है ठंडे इस्पात खंडक को भट्टी के एक प्रांत में घुसा, बीच से गुजारते हुए क्रमशः आगे बढ़ाते चलना और रास्ते–भर धीरे–धीरे ताप में वृद्धि कर अंततः वांछित ताप पर संपूर्ण ताप–सिक्त करना और आखिरी प्रांत से गर्म माल निकाल बाहर कर बेलन के सुपुर्द करना। घान भार की मात्रा, आकार और भट्टी के अंदर इसकी गति पर निर्भर करता कि कितनी जल्दी माल सम्पूर्ण रूप से भट्टी के निम्न ताप क्षेत्र से चलकर बेल्लन के लिए उपयुक्त उच्च तापक्षेत्र तक पहुँचेगा।

आजकल सतत ढलाई के साथ–साथ सतत बेलन कर माल तैयार करने की कोशिशें हो रही हैं। इस तरह ढाले गए अर्ध–तैयार माल को पुनः गर्म करने की जरूरत नहीं रहती और ऊर्जा की बर्बादी रुक जाती है। इसके लिए ढलाई और बेलन स्थलों के बीच एक भंडारण भट्टी रखी जाती है। यह भट्टी ढलाई से निकलने वाले माल में निहित ताप-ऊर्जा को बचाता है और जरूरत हो तो कुछ ताप बढ़ा देता है।

बेलनों की पंक्ति (रोल ट्रेन)

बेलनशाला में किस प्रकार और कौन सा माल तैयार होगा उसी के अनुसार बेलनों का चयन किया जाता है। अतः विभिन्न प्रकार के बेलन–समूहों की जरूरत पड़ती है। इन्हें मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है – तप्त बेलन पंक्ति तथा अतप्त बेलन–पंक्ति। पुनश्च, तप्त बेलनावलि को निम्न प्रकार श्रेणीबद्ध किया जा सकता है –

- प्रथम चरण का स्थूल बेलन अथवा रफिंग ट्रेन
- द्वितीय चरण का अपेक्षाकृत हल्का बेलन अथवा मध्यम पंक्ति
- शेष चरण का संपूर्णक बेलन अथवा फिनिशिंग पंक्ति

आजकल सतत ढलाई में, उन्नत किस्म के यंत्रोपकरण तथा कम्प्यूटर प्रयोग के साथ–साथ बेलनशाला और उसके विन्यास में युगांतरकारी परिवर्तन आया है। कई जगह तो प्रथम और द्वितीय चरण के बेलन समूह का व्यवहार प्रायः अनावश्यक हो चला है। अतः आधुनिक बेलनशाला में यंत्रादि कम लगते हैं तथा भट्टी एवं बेलन पर खर्च होने वाली पूँजी भी बचती है। इसके अलावा, उत्पादन वृद्धि के साथ–साथ प्रति टन तैयार माल में अपशिष्ट कम बनता है।

उदाहरण स्वरूप, दुर्गापुर इस्पात संयंत्र में टी.एम.टी. (थर्मो मेकेनिकल ट्रांसफार्मेशन) अर्थात् युगपत ताप और यांत्रिक शक्ति के उपयोग से इस्पात की आकार–विरूपण प्रणाली का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रणाली में इस्पात की गुणता ऐसी मिलती है कि बेलनोपरांत इस इस्पात को अन्य किसी रूप देने अथवा तापोपचार की जरूरती नहीं रहती। इस प्रकार कार्य अति संक्षिप्त हो जाता है।

इस्पात उत्पादन

पद्धति	भारतीय औसत	अंतरराष्ट्रीय औसत
एल.डी इस्पात उत्पादन		
टेप टु टैप टाईम	100 मिनट	48 मिनट
धातु की लब्धि	87 प्रतिशत	90 प्रतिशत
कास्टर उत्पादन	0.8–1.4 मीटर / मिनट	1.2–2.5 मीटर प्रति मिनट
ऊष्मावरोधकों की खपत	12 किलो प्रतिटन	10 किलो से भी कम
ऊर्जा (तप्त स्ट्रिप मिल) की खपत		
विद्युत्	80 किलोवाट घंटा प्रतिटन	40 किलो वाट घंटा प्रतिटन
ईंधन	500–600 मिलियन कैलोरी प्रतिटन	250–300 मिलियन कैलोरी प्रतिटन

किसी बेलनशाला में जिस तरह भट्टी और बेलन–पंक्ति की जरूरत होती है उसी प्रकार परिसज्जन (फिनिशिंग लाईन) व्यवस्था की भी जरूरत समापन क्षेत्र में होती है जहाँ ग्राहक की विशेष नज़र रहती है। इस विभाग की कुछ–एक प्रयोजनीय व्यवस्थाएं निम्नलिखित हैं :–

- कटिंग अर्थात् माप मुताबिक काटना, चीरना, छँटाई करना इत्यादि
- स्ट्रेटनिंग अर्थात् मशीन की सहायता से सीधा करना, समतल करना
- पृष्ठ पॉलिशन तेल का पतला आवरण देकर सतह की रक्षा करना
- स्टैकिंग एंड रीट्रिविंग अर्थात् माल सजाकर रखना ताकि जरूरत पड़ने पर

आसानी से शिनाख्त कर स्टॉक से बाहर किया जा सके

- निरीक्षण अर्थात माल की गुणता की जाँच करना
- पार्किंग, स्टैंपिंग, बंडलिंग तथा पैकिंग अर्थात् माल के ऊपर निशान लगाना, छाप लगाना और एक प्रकार के माल का बंडल बनाना

हाँ, सभी तरह के माल पर सारी पद्धतियों का प्रयोग हो यह आवश्यक नहीं। माल के प्रकार और माँग के अनुसार ही व्यवस्था की जाती है।

बेलन आधार (roll stand)

बेलनशाला का केंद्र बिंदु मंच ही होता है क्योंकि इस्पात खंडक के आकार का नियंत्रण यही होता है। इस के हिस्से मुख्यतः इस प्रकार हैं :

- रोल हाउसिंग अर्थात् बेलनकक्ष
- रोल एसेंबली (रोल, चोक, बेयरिंग इत्यादि) बेलन और उसकी कील, बेयरिंग इत्यादि का समावेश
- स्क्रूडाउन यंत्रावली – बेलन को ऊपर–नीचे करने की व्यवस्था
- ओवर लोड से क्षतिग्रस्त यंत्रावली अर्थात् बेलन के ऊपर अतिरिक्त दाब पड़ने पर रोल के बचाव की व्यवस्था
- चालन तंत्र अर्थात बेलनों को घुमाने की व्यवस्था

बेलनकक्ष एक अथवा दो भागों में बना होता है। इसकी क्षमता और आमाप ऐसा होना चाहिए कि बेलन हर प्रकार के दबाव तथा आकस्मिक झटकों को सह सके। बेलनकक्ष में बेलन चौक अथवा कील तथा बाल बेयरिंग अथवा रोलर बेयरिंग आदि स्थापित किए जाते हैं। ये बेयरिंग बेलन का चालन नियंत्रित करते हैं एवं हर प्रकार का दाब सह सकते हैं।

बेलनों के बीच अंतराल अथवा दूरी स्क्रूडाउन व्यवस्था के द्वारा नियंत्रित होती हैं। बेलनों के बीच फाँक में ही इस्पात खंडक प्रवेश करता है, दबता है तथा बाहर निकलता है। यह काम अच्छी तरह हो पाये इसके लिए कई यंत्रों की सहायता ली जाती है। जिनमें कतिपय उल्लेखनीय हैं :

- टिल्टिंग युक्ति – माल पलटी करने की युक्ति

- प्रवेश तथा निर्गम गाइड – माल के प्रवेश और निर्गमन की निर्देश व्यवस्था; विद्युत् मोटर द्वारा बेलन चलाए जाते हैं। इन मोटरों का बलाघूर्ण (torque) अथवा घूर्णन शक्ति;

बेलन बिजली की मोटर से चलते हैं। इस मोटर के बलाघूर्ण अथवा टॉर्क को बेलन पर आरोपित करते ही बेलन घूमने लगते हैं। ऊपर और नीचे वाले बेलन परस्पर विपरीत दिशाओं में घूमते हैं जिसके फलस्वरूप गर्म इस्पात खंडक बेलन के सामने आते बेलनों के बीच फँस जाता है और बेलनों में काटे गए खाँचे के बीच खिंचते जाता है। बेलन के दबाव की वजह से इस्पात खंडक परिवर्तित आकार में बेलन से बाहर निकल आता है ।

बेलन आधार के प्रकार

साधारणतः बेलनों की संख्या के हिसाब से बेलन आधार का प्ररूप तय किया जाता है जैसे कि –

- द्वि बेलन मिल
- तीन बेलन मिल
- चार बेलन मिल
- छः बेलन मिल
- गुच्छ मंच (cluster mill)

चार तल्ला, दो तल्ला तथा गुच्छ मंचों में विशेष पृष्ठक बेलन (बैक–अपरोल) होते हैं। गुच्छ मंच में कभी–कभी 12 अथवा 20 बेलन रहते है, विशेषतया जब अतप्त बेलन प्रणाली से काम करते हैं। इस प्रकार के बेलन मंचों से ठीक–ठीक माप और चमक की सतह प्राप्त करना संभव होता है। सी वी सी प्रणाली के प्रचलन के साथ–साथ संकुल–विन्यस्त (कंपैक्ट सेट) बेलनों का प्रचलन भी बढ़ा है क्योंकि इस प्रणाली में अत्यधिक सूक्ष्म माप का उत्पादन करना संभव है। वायर–रॉड बार, तथा तप्त स्ट्रिप मिलों में इस तरह के बेलनों की कतार बहुत उपयोगी साबित हुई है। खासकर सतत ढलाई किए गए माल का गर्म अवस्था में ही कपैक्ट मिल के माध्यम से बेल्लन किया जाता है जिससे उत्पादन की मात्रा एवं मान दोनों में वृद्धि होती है।

9—302 Min. of HRD/2013

गर्म अवस्था में आकार गठन की अन्य पद्धतियाँ

गर्म अवस्था में बेलन करने के अलावा अन्य उपायों से भी इस्पात खंडक का आकार गठन करना संभव है। मसलन फोर्जिंग, प्रेसिंग, अपसेटिंग इत्यादि। इस्पात की पाइप और ट्यूब बनाने की पद्धति, सीवन रहित (सीमलेस) एवं जोड़े हुए (वेल्डेड) ट्यूब बनाने की विधि की भांति भी बेलन विहीन होती है।

सीवन रहित ट्यूब अथवा पाइप मुख्यतः तीन चरणों में बनाई जाती है पहले चरण में इस्पात खंडक (विलेट अथवा ब्लूम) को उच्चताप पर गर्म कर उसके बीचों–बीच मैंड्रेल से भेद कर भीतर का माल हटाया जाता है। इस तरह इस्पात खंडक क्रमशः खाली अथवा खोखला होता जाता है। बाद में इस मेंड्रेल को घुमा–फिराकर इच्छानुसार ट्यूब की परिधि बढ़ाई जा सकती है। दूसरे चरण में, इस खोखले इस्पात खंडक को दुबारा खींचकर लंबा किया जाता है (स्ट्रेच रिड्यूसिंग)। तृतीय चरण में, इस पूरी ट्यूब को पुनः गर्म कर आवश्यकतानुसार लंबाई बढ़ाकर काम पूरा किया जाता है। आजकल सीवन रहित ट्यूब का माल अत्यंत उच्च गुणता का बनाया जाता है ताकि तप्त प्रक्रम से निर्मित ट्यूब को पुनः अतप्त अवस्था में खींचा जा सके (कोल्ड ड्राइंग)। इस प्रकार ट्यूब का आंतरिक तथा बाहरी व्यास, लंबाई एवं पृष्ठ की चमक, बाजार की माँग मुताबिक तैयार किया जा सके। यह खींच कर लंबा करने की प्रणाली चार प्रकार की हो सकती है–

- प्लग रोलिंग जहाँ इस्पात खंडक पर लंबाईवत् एक तल्ला बेलन मंच के अंदर ही काम किया जाता है।
- पिल्गर रोलिंग भी प्लग रोलिंग की तरह ही है पर इस पर एक बार में ही काम पूरा नहीं होता
- तिर्यक बेल्लन आजकल अन्य प्रक्रमों में से सर्वाधिक प्रचलित हैं।

बिना जोड़ अथवा बेल्ड की हुई ट्यूब बनाने के लिए कुछ पद्धतियाँ प्रचलन में हैं : मसलन

क. फ्रित्ज–मूंन प्रक्रम

ख. विद्युत् प्रतिरोध वेल्डिंग (इलेक्ट्रिकल रेजिसटेंस वेल्डिंग)

ग. प्रेरण वेल्डिंग प्रक्रम (इंडक्शन वेल्डिंग प्रॉसेस)

घ. निमज्जित आर्क बेल्डिंग प्रक्रम (सब्मर्ज आर्कवेल्डिंग प्रॉसेस)

इन सब प्रक्रमों में बहुत छोटे–छोटे ट्यूब से लेकर बड़े–बड़े व्यास के पाइप तक (खनिज तेल के निष्कासन और परिवहन के लिए उपयोगी) तैयार किए जाते हैं।

इनमें सर्वाधिक प्रचलित विद्युत् प्रतिरोध वेल्डिंग प्रक्रम है।

ट्यूब बनाने के लिए पहले इस्पात की चादर को आकार के मुताबिक माप में काट लिया जाता है और दोनों किनारों को, जिन्हें आपस में जोड़ना होता है, उन्हें ठीक से साफ कर लिया जाता है। इसके बाद जैसा चित्र 50 में दिखाया गया है उसे धीरे–धीरे मोड़ कर गोलाकार बनाकर दोनों हिस्सों को समीप लाया जाता है एवं विद्युत् प्रतिरोधक शक्ति की सहायता से उन्हें गर्म कर आवश्यक दबाव देकर जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार जोड़ने से ट्यूब के अंदर और बाहर की तरफ कुछ फालतू माल जम जाता है जिसे बाद में मशीन की सहायता से काटकर ट्यूब की सतह के समतल कर दिया जाता है। यह जोड़युक्त ट्यूब अतप्त कर्षण के द्वारा जरूरत मुताबिक लंबी कर ली जाती है। विद्युत् शक्ति के स्थान पर ऑक्सी–ऐसीटिलीन गैस ज्वाला का प्रयोग कर पाइप और ट्यूब बनाये जा सकते हैं।

अत्यधिक व्यास का पाइप बनाना हो तो सर्पिल वेल्डिंग का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि जिस चौड़ाई की इस्पात चादर मिलती है उससे इतना बड़ा व्यास सीधा–सीधा नहीं मिल सकता। इसीलिए चादर को सीधा–सीधे गोल करने की बजाय तिरछा घुमाकर माप के हिसाब से मोड़ा जाता है इसके बाद पहले पेंच की चादर का किनारा दूसरे घुमाव (पेंच) के किनारे सटाकर पहले की तरह ही जोड़ दिया जाता है। पेंचदार पाईप इस तरह तैयार होता है। व्यवहारिक रूप से आजकल सीवनहीन एवं जोड़दार पाईप में कोई गुणगत फर्क नहीं रह गया है। हाँ, उनकी गुण निर्धारण की पद्धति अलग–अलग है। सीवन विहीन ट्यूब की बात पहले बताई जा चुकी है।

हथौड़ों से पीट कर अथवा दाब डालकर आकार–गठन (फोर्जिंग एंड प्रेसिंग)।

दाब शक्ति के आघात से आकार गठन तभी किया जाता है जब :–

क. इस्पात खंडक बहुत भारी होता है

ख. इस्पात खंडक को असम आकार देना हो

ग. तैयार किए गए इस्पात का प्रयोग विशिष्ट कार्य के लिए हो

घ. एक साथ नियत संख्या में माल तैयार करने की जरूरत हो (किफायती लॉट)

बेलन द्वारा माल तैयार करने में सबसे कम खर्च आता है बशर्ते इसकी माँग बड़ी मात्रा में हो। असम इस्पात खंडक को मशीनों द्वारा काट छील कर भी सम बनाया जा सकता है पर उसमें इस्पात बहुत नष्ट होता है। हथौड़ों से कूटा पीटा अथवा दाब द्वारा तैयार माल में रेणुओं का गठन उन्नत किस्म का होता है तथा उनकी प्रवाह धारा (फ्लो लाइन) माल के आकार के समांतर होती है। फलतः इस प्रक्रम से तैयार किया माल उच्चमान का एवं अधिक शक्तिपूर्ण तथा मजबूत होता है। पीटा हुआ तथा दबाया हुआ माल अधिक झटके सहन कर सकता है जो केवल बेलन से पीसा गया माल नहीं कर पाता। मनुष्य ने बहुत युगों पहले ही गर्म और ठंडी अवस्था में हथौड़ी से पीट कर इस्पात के आकार गठन का तरीका ढूँढ लिया था। तब बेलन यंत्र का आविष्कार भी नहीं हुआ था। आज भी यह पद्धति विशेष–विशेष कार्यों के लिए प्रयुक्त होती है। हाँ, इस काम के लिए विशेष यंत्र उपलब्ध हैं। वाष्प अथवा विद्युत् द्वारा चालित दबाव देने वाली भारी से भारी मशीनें आज भी उपलब्ध हैं। निहाई के ऊपर एक मुँह वाली अथवा दोमुखी हथौड़ी (जो एक साथ दो दिशाओं में काम करती है) भी मिल जाती है। कुछ किलोग्राम की छोटी हथौड़ी से शुरू कर कई एक टन की बड़ी हथौड़ी का भी व्यवहार हो रहा है। यह निर्भर करता है माल के आयतन और उसकी शक्ति पर। प्रायः तीन हजार वर्ष पहले हम लोगों का विख्यात अशोक स्तंभ इसी प्रकार हथौड़ों से पीट कर तैयार हुआ था। इतने भारी इस्पात खंडक उस जमाने में कैसे बनाये जाते थे सोचकर हैरानी होती है। इस प्रक्रम के दो भेद हैं –

- विवृत रूपदा फोर्जिंग अर्थात् खुली निहाई के ऊपर हथौड़ों की चोट से पिटाई
- रूपदा फार्जिंग (डाइ फोर्जिंग) अर्थात् निहाई के बदले साँचे के ऊपर माल रख पिटाई

इस प्रक्रम से छोटे बिलेट, ब्लूम से लेकर 400–500 टन वजन के इस्पात पिंड को आकार दिया जाता है। प्राचीन काल में सिर्फ निहाई पर इस्पात खंडक को रख हथौड़ों से पीट कर आकार गठित दिया जाता था। आजकल निहाई की जगह साँचे के आकार में तैयार एक स्तंभ के ऊपर गर्म इस्पात खंडक को रख साँचे के खाली भाग में इस्पात को जोर देकर प्रतिष्ट कराकर नाना जटिल आकार भी बनाने संभव हैं। यह प्रणाली कम खर्च में मोटर गाड़ी एवं रेल के पुर्जे बनाने के लिए अक्सर प्रयोग होती है। दाब और इस्पात के मान अनुसार ताप (जिस पर सहज ही आकार बन जाएगा) का निर्णय कर लिया जाता है

दाब फोर्जन

इस यंत्र में धीरे–धीरे दाब का प्रयोग किया जाता है, हथौड़ों की तरह एक बार ही आघात नहीं किया जाता। हथौड़ों की आघात–शक्ति इस्पात खंडक की ऊपरी सतह पर क्षणमात्र रुकती है। बीच में उसका कोई प्रभाव नहीं पहुँचता फलतः भीतरी रेणुओं में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार गठित माल बेलन यंत्र द्वारा तैयार माल से काफी उन्नत किस्म का होता है। इंग्लैंड में 1861 ई. में पहली हाइड्रॉलिक (द्रवीय) प्रेस का आविष्कार हुआ था। आजकल जल की जगह तेल का इस्तेमाल ज्यादा है। ये यंत्र कई एक हजार टन तक दाब का सृजन कर सकते हैं। आजकल भारी माल मसलन रेल के चक्के, विद्युत् उत्पादन करने वाले जेनरेटर के पुर्जे इसी प्रक्रम से तैयार किए जाते हैं।

उत्सारण प्रक्रम (एक्सट्रूजन) प्रक्रम

बेलन द्वारा तैयार करना असंभव है, हथौड़ों से पीटकर भी नहीं। परंतु उत्सारण प्रक्रम से बनाना संभव है। इस प्रक्रम में इस्पात खंडक को निष्कासन लायक ताप पर गर्म कर एक पात्र में रखा जाता है और माल के एक सिरे पर दाब लगाया जाता है। पात्र के दूसरी तरफ मुँह खुला रहता है जो निश्चित साँचे के आकार में तैयार किया जाता है।

फलतः गर्म इस्पात उत्सर्जित होते समय उसी साँचे के आकार में निकलता है। बहुत कुछ वैसा ही जैसा कि टूथपेस्ट की ट्यूब दबाने पर पेस्ट निकलता है। ट्यूब के भीतर अगर मंजन की जगह गर्म इस्पात होता तो ट्यूब के पीछे से दबाने पर इस्पात बाहर आता और उसका आकार ट्यूब के मुँह के आकार जैसा होता। उत्सारण प्रक्रम इसी प्रकार काम करती है (चित्र 34 देखें)

अतप्त अवस्था में रूपण

अब तक हमने इस्पात गर्म कर आकार गठन पर चर्चा की। परंतु अतप्त अवस्था में भी इस्पात को नाना आकार दिए जा सकते हैं। इस पुस्तक में अन्यत्र इन दोनों अवस्थाओं में आकार-गठन की चर्चा की गई है।

गर्म अवस्था में तैयार इस्पात के आकार कई बार सीधे तौर पर इस्तेमाल नहीं किए जाते, कारण कि उनसे काम लायक सटीक आयतन, पृष्ठ की गुणता, तन्यता इत्यादि

प्राप्त नहीं होते। इसलिए ऐसे इस्पात को अतप्त अवस्था में पुनः थोड़ा रूप देना पड़ता है ताकि निर्धारित गुण प्राप्त हो सके। ठंडे इस्पात पर रूपण करने से इस्पात की पृष्ठ काफी चमक उठती है तथा सामर्थ्य भी बढ़ जाती है और यह प्रक्रम कर्म कठोरण (work hardening) कहलाता है। इस्पात को इस अवस्था में आकार देकर बाद में उष्मोपचार द्वारा इच्छानुसार पदार्थगत गुणता प्राप्त की जा सकती है। स्वाभाविक है कि अतप्त अवस्था में आकार प्रदान करने में गर्म अवस्था से कहीं अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है।

अवश्य ही गर्म अवस्था में आकार गठन के बाद इस्पात की सतह अच्छी तरह साफ कर लेनी चाहिए ताकि अतप्त अवस्था में यह काम हो सके। पृष्ठ से जंग, छीलन, पपड़ी इत्यादि साफ करने के लिए मोटी रेत अथवा लोहे के बंटे तेज वेग से इस्पात खंड के ऊपर मारते (सैंड अथवा शॉट ब्लास्टिंग) है। रासायनिक अभिक्रिया द्वारा भी पृष्ठ की सफाई करते हैं। अतप्त अवस्था में आकार गठन की तीन विशिष्ट प्रचलित व्यवस्थायें हैं :–

क. कोल्ड रोलिंग अर्थात् अतप्त अवस्था में खींच कर लंबा करना
ख. कोल्ड ड्राईंग अर्थात् अतप्त अवस्था में खींच कर लंबा करना
ग. विशिष्ट अतप्त रूपण अर्थात् ठंडी अवस्था में विशेष उपाय से आकार प्रदान करना।

इसके अलावा और भी प्रणालियाँ हैं जैसे कि – अपसेटिंग अथवा उल्टा कर हथौड़ों से पीटना, स्टांपिंग अर्थात् दाब दे कर साँचे के आकार में लाना; बंकन, पंचिंग अर्थात् दाब देकर छेद करना तथा गभीर कर्षण (deep drawing) आदि।

अतप्त बेल्लन (कोल्ड रोलिंग)

यह प्रक्रम मुख्यतः अतप्त कर्षण जैसा ही है अर्थात् ऐसे इस्पात की चादर जिसे गहराई में खींचा जा सके। इस्पात, टिन के आवरण वाली इस्पात चादर (टिन प्लेट), स्टेनलेस इस्पात की चादर, ट्यूब बनाने के लिए पतली चादर इत्यादि तैयार करने के लिए काम में आती है।

इस प्रक्रम का सर्वाधिक उपयोग छोटी पत्ती अथवा स्ट्रिप बनाने में है। स्ट्रिप बनाने के लिए दो तल्ला, चार तल्ला अथवा गुच्छ बेलन मंच की सहायता ली जाती

है। एकाधिक बेलन मंच (टैंडम मिल) अथवा उत्क्रमित बेलन मंच (रिवर्सिंग मिल) का प्रयोग, उत्पादन क्षमता के अनुसार किया जाता है। ऐसे इस्पात को सहज ही कठोरित किया जा सकता है (वर्क हाईनिंग) यथा स्टेनलेस, विद्युत् यंत्रोपयोगी इस्पात आदि। इन सब के लिए गुच्छ बेलन मंच जिसमें उलट बेलन की व्यवस्था हो (क्लस्टर रिवर्सिंग मिल) का प्रयोग होता है। इस किस्म के इस्पात से अतप्त बेलन के समय रेणु–विकृति होने से सख्त पत्ती अथवा सख्त पतरे बनाए जाते हैं।

आजकल इस तरह के बेलन मंच में, खासकर स्ट्रिप पर तनाव (स्ट्रिप टेंशन) देने, बेलन की गति, उलट बेलन में समय विभिन्नता, उन्नत किस्म के स्वयं सक्रिय यंत्रों की कंप्यूटर द्वारा नियंत्रण की व्यवस्था रहती है। फलतः स्ट्रिप एकसमान बेल्लित होती है, मोटाई में महज माइक्रोन का अंतर ही पड़ता है तथा पृष्ठ उन्नत किस्म का मिलती है।

अतप्त बेल्लन का काम पूरा होने पर इस तरह के स्ट्रिप को थोड़ा खींच कर रखते हैं। एक अथवा दो ठंडे दो तल्ला बेलनों के बीच से इसे गुजारा जाता है। इस बेलन को त्वक पारण बेलन (स्किन पास मिल) कहते हैं। इस बेलन की वजह से स्ट्रिप 2–3 प्रतिशत लंबी हो जाती है तथा इसकी मोटाई पूरी चादर में मात्र 0.15 माइक्रोन के अंदर ही भिन्न होती है। स्ट्रिप की त्वचा का मान भी बेहतर हो जाता है। त्वचा की किस्म में परिवर्तन भी माँग के अनुसार किया जा सकता है।

अतप्त कर्षण (कोल्ड ड्राईंग)

इस प्रक्रम में इस्पात को गोल अथवा अन्य आकार के साँचे के मुँह से निकाल कर निर्दिष्ट आकार दिया जाता है। साँचे का मुँह फिसलन दार रखने के लिए कोई चर्बी अथवा तेल आदि का स्नेहन के रूप में प्रयोग किया जाता है। फलतः खींचने वाले यंत्र का घर्षण, साँचे के मुँह के साथ कम हो जाता है। इससे तैयार माल की सतह नरम एवं चमकदार होती है। साधारणः छड़ और तार (रॉड एवं वायर) के कर्षण के लिए यह प्रक्रम उपयोगी होता है। गर्म अवस्था में कम व्यास के छड़, 5 मिली मीटर से कम मोटाई की चादर, बेलन द्वारा बनाने संभव नहीं होते। इससे पतले छड़ अथवा तार, अतप्त अवस्था में खिंचाई द्वारा ही तैयार किए जाते हैं। इसके लिए कुछ एक साँचों की जरूरत होती है, जिनके मुँह क्रमशः आयतन में छोटे होते जाते हैं जब तक कि जरूरत के व्यास का तार बाहर नहीं निकलता। खिंचाई करने वाला यंत्र, छड़ के एक

सिरे को कस कर पकड़ता है और क्रमशः साँचे के बीच से खींचकर बाहर करता है। इस विधि तैयार छड़ अथवा तार की सतह खूब मुलायम और चमकदार होती है तथा इसकी चालकता भी बढ़ जाती है। इसके बाद ज्यादातर छड़ अथवा तार को सीधा कर उष्मोपचार किया जाता है। अतप्त अवस्था में पाइप और ट्यूब खींचने की व्यवस्था भी ऐसी ही है।

अतप्त अवस्था में विशिष्ट रूपण (स्पेशल कोल्ड फार्मिंग)

अतप्त अवस्था में इस्पात को पुनः मोड़कर अथवा गहरा खींचकर नाना प्रकार के आकार दिए जा सकते हैं। इसके लिए अनेक प्रकार के यंत्रों की जरूरत पड़ती है। सभी प्रकार के इस्पात मोटी/पतली चादर एवं स्ट्रिप का इस्तेमाल हो सकता है। हाँ गभीर कर्षण और अतिरिक्त गभीर कर्षण का इस्पात ज्यादा सटीक होता है। अन्यथा आकार देते समय चादर फट सकती है। में इस्पात की चादर से अतप्त बेल्लन प्रक्रम द्वारा ट्रेपेजॉयड आकार का गठन दिखाया गया है।

इस्पात को जोड़ना

एक अथवा अधिक इस्पात खंडकों को नाना उपायों से आपस में जोड़ा जा सकता है। उनमें से उल्लेखनीय एवं प्रचलित दो विधियाँ हैं।

क. वेल्डिंग अथवा बांडिंग अर्थात दो इस्पात के टुकड़ों को गर्म अवस्था में दाब देकर जोड़ देना

ख. रिवेटिंग अर्थात् दो इस्पात खंड़ों में छेद कर उनके बीच से ठीक–ठीक माप का बोल्ट घुसाकर दोनों तरफ से पीट कर जोड़ लगाना।

पहली पद्धति में दो इस्पात खंडकों के जिन दो सिरों को जोड़ा जाता है, उन्हें उच्च ताप पर (लगभग गलनांक तक) गर्म कर परस्पर सटाकर दबाया जाता है अथवा पीट–पीट कर जोड़ दिया जाता है। इसके लिए दोनों सिरों को नाना उपायों। विशेषतया विद्युत् प्रतिरोधक शक्ति द्वारा गर्म किया जाता है। ऑक्सी–ऐसीटिलीन गैस द्वारा गर्म करना भी संभव है। आजकल स्वचालित जोड़ लगाने वाली बेल्डिंग मशीन का खूब उपयोग होता है जो जल्दी–जल्दी काम करने के लिए होती है। यह मशीन विद्युत् चालित होती है। इसके अलावा इलेक्ट्रॉन पुंज एवं प्लैज्मा वेल्डिंग मशीनों जैसे आधुनिक मशीनों की मदद से मोटी इस्पात की चादरों के साथ पतले

इस्पात खंडकों का जोड़ लगाना भी संभव हो गया है। मोटर गाड़ी तैयार करने वाले कारखानों में बहुत पतली चादरों में टाँके लगाने के लिए स्पॉट वेल्डिंग विधि का प्रचुर प्रयोग हो रहा है। काम और काम की जगह के मुताबिक सटीक विधि का चुनाव करना पड़ता है। रिवेटिंग द्वारा जोड़ लगाने की पद्धति आजकल प्रायः समाप्त ही हो गई है। उसकी जगह और दूसरे प्रक्रम विकसित हो गए हैं।

सतह प्रलेपन अथवा आवरण

स्टेनलैस इस्पात की कुछ किस्मों को छोड़ अन्य इस्पात को जंग से बचाने के लिए इसकी सतह पर जंग निरोधक धातु अथवा अन्य पदार्थों का आवरण चढ़ा दिया जाता है। इससे इस्पात की सतह देखने में भी अच्छी लगती है। इस काम के लिए पहले तो चादर के पृष्ठ को अच्छी तरह साफ करना पड़ता है।

इस प्रकार इस्पात के पृष्ठ पर आवरण–चढ़ाने की दो प्रकार की व्यवस्थाएं उपलब्ध हैं – एक अस्थाई और दूसरी स्थायी व्यवस्था।

अस्थायी व्यवस्था

तैयार इस्पात जब अल्पकाल के लिए पड़ा रहना हो अथवा एक स्थान से दूसरे तक भेजना हो, उस समय के लिए पृष्ठ पर तेल ग्रीज़ अथवा वार्निश की फुहार मार कर जंग से बचाया जाता है। कभी–कभी थोड़ा अधिक समय के लिए रक्षा करनी हो तो सतह को निष्क्रिय कर देते हैं। इसके लिए सतह पर किसी ठोस ऑक्साइड का पतला आवरण चढ़ा देते हैं। इसे इस्पात का नीलकरण (ब्यूलईंग ऑफ स्टील) कहते हैं।

इसके अलावा फास्फेट की पतली चादर चढ़ाने की विधि भी प्रयुक्त होती है जिसे फास्फेटिंग अथवा फास्फाईड कोटिंग कहते हैं। ये प्रक्रम अस्थायी होते हैं क्योंकि ये ज्यादा दिन नहीं टिकते।

स्थायी व्यवस्था

तैयार इस्पात की सतह को स्थायी तौर पर जंग से बचाने के लिए मूलतः दो तरह के धात्विक अथवा अधात्विक पदार्थों का आवरण चढ़ाया जाता है।

धात्विक आवरण के लिए कई विधियाँ प्रचलन में हैं, जैसे

- हॉट डिप कोटिंग अर्थात् ग़ले हुए धातु में इस्पात की चादर को डुबाना

- डिफयूजन मेटल कोटिंग अर्थात किसी धातु को इस्पात की सतह पर टपका कर प्रवेश कराना
- अधिपट्टन (क्लैडिंग) अर्थात इस्पात को किसी धातु की चादर से आवृत करना।
- फुहारन अर्थात इस्पात की सतह पर गले हुए धातु का फव्वारा छोड़कर आवृत्त करना।
- इलेक्टॉनिक कोटिंग अर्थात विद्युत् की सहायता से इस्पात की सतह पर विलेप चढ़ाना।

अधात्विक पदार्थों का आवरण मसलन :–

- इनार्गनिक कोटिंग अर्थात अजैव पदार्थों का आवरण
- आर्गेनिक कोटिंग अर्थात् जैव पदार्थों का आवरण
- प्लास्टिक कोटिंग अर्थात् प्लास्टिक का आवरण

धात्विक आच्छादन

मूलतः जो धातु स्वभाव से जंग विरोधी है उनका एक पतला आवरण इस्पात की सतह पर देकर जंग से रक्षा की जा सकती है। धातु की रासायनिक तथा पदार्थगत गुणता का विचार कर ही उसे प्रयोग में लाया जाता है। गुणगत विचार से मुख्यतः तीन श्रेणी की धातुयें ध्यान देने योग्य हैं –

- उच्च वर्ग की जैसे सोना, चाँदी, टिन, निकैल
- मध्यमवर्गीय यथा जस्ता, ऐलुमिनियम
- निकृष्ट वर्ग की मसलन बाकी सभी धातुएँ

उच्चवर्ग की धातुओं का आवरण देने पर, यदि कहीं प्रलेप नष्ट होता है तो वहाँ गैल्वनी संक्षारण द्वारा जंग लगना शुरु हो जाता है। अपेक्षाकृत कम मूल्यवान धातुओं का व्यवहार करने पर यदि कोई क्षति होती है तो वह इसी धातु की होती है, और इस्पात पर कोई असर नहीं होता। इसी कारण जस्ता (Zn) और ऐलुमिनियम (Al) इस्पात के ऊपर आवरण देने के लिए श्रेष्ठ धातुएं हैं। इसके अलावा, जिस धातु का आवरण दिया जाता है उसकी सहनशीलता, नमनीयता इत्यादि यांत्रिक गुण, इस्पात

के अनुकूल होने चाहिए, जिससे आच्छादित इस्पात की चादर को आकार देते समय कोई समस्या न पैदा हो।

इस्पात के ऊपर धातु व आवरण चढ़ाने की कई विधियां हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है –

तप्त निमज्जी विलेपन (hot dip coating)

पहले इस्पात की चादर को भली प्रकार अम्ल अथवा क्षार और इसके बाद पानी से धुलाई कर साफ कर लिया जाता है। इसके बाद उसे गले हुए धातु के बर्तन में डुबाकर चादर के दोनों तरफ विलेपन किया जाता है। यह तरीका बहुत पुराना किंतु आज भी प्रचलित है। चित्र 56 में जस्ते का आवरण चढ़ाने की विधि दिखाई गई है। यह प्रणाली खासी लोकप्रिय हुई है। तरल जस्ते के पात्र का ताप करीब 450 डिग्री सेल्सियस रखा जाता है। इस प्रक्रम में कुछ हद तक जस्ते का ऑक्साइड बन जाता है। धातुमल को बीच बीच में पात्र से निकाल बाहर करना चाहिए। अच्छी तरह जंग के प्रतिरोध के लिए यह जरूरी है कि चादर के प्रत्येक भाग पर समान रूप से जस्ता का विलेपन हो।

जस्ता की जगह आजकल ऐलुमिनियम अथवा राँगा (टिन) का आंशिक अथवा पूर्ण व्यवहार भी किया जाता है।

टपका कर विलेपन (धातु विसरण विलेपन)

इस प्रक्रम में वाष्प अथवा वाष्पशील वस्तु के माध्यम से किसी यौगिक का अपघटन कर उसके धातु अंश को इस्पात की सतह पर विलेपित किया जाता है।

इस विलेप का धातु धीरे–धीरे इस्पात की त्वचा में घुसता रहता है और जंग विरोधी परत बनाता है।

उदाहरण स्वरूप

- क्रोमाइजिंग अथवा क्रोमियम धातु की परत चढ़ाना।
- केलोराइजिंग अथवा ऐलुमिनियम धातु की परत चढ़ाना।
- शेराडाइजिंग अथवा जस्ते का प्रवेश

धातु अधिपट्टन (metal cladding)

इस प्रक्रम में एक अथवा अधिक धातुओं की चादर से इस्पात को मढ़कर मोड़ दिया जाता है। इसके लिए इस्पात और दूसरे मढ़ाई धातु की सतह को अच्छी तरह साफ कर लिया जाता है और आवश्यकतानुसार तैयार कर लिया जाता है। फिर उच्चताप पर दोनों चादरों को सटाकर बेल्लित कर दिया जाता है मानों एक ही साथ बनी चादर हो। इस प्रक्रम से साधारण इस्पात को दूसरी धातुओं जैसे ताँबा, टाइटेनियम इत्यादि से भी मढ़ा जा सकता है। यहीं से संयुक्त धातुओं (composite metal) की धारणा विकसित हुई है। आजकल नाना तरह की वस्तुओं तथा इंजीनियरी कामों में प्रयुक्त पुरजों में ऐसी सामग्री का प्रयोग हो रहा है।

अधिपट्टम द्वारा धातु विलेपन (इलेक्ट्रिक मेटल कोटिंग)

बिजली की मदद से इस्पात पर धातु का आवरण देना एक–युगांतरकारी काम था। गर्म धातुओं में डुबाकर जिन धातुओं का विलेपन संभव नहीं था वे सब इस प्रक्रम द्वारा इस्पात पर विलेपित की जा सकती हैं। इससे सतह पर विलेपन मात्र .002 से .0035 मिली मीटर में पूरा हो जाता है। यह विलेपन इतना पतला होता है कि मापना भी दुष्कर होता है। इस प्रक्रम द्वारा इस्पात पर जस्ता, कैडमियम, निकैल, क्रोमियम, टिन, ताँबा इत्यादि धातुओं के अलावा उच्चवर्णीय धातु तथा मिश्रातुओं का मुलम्मा चढ़ाया जा सकता है। इस प्रक्रम द्वारा बनाया गया टिन–आच्छादित इस्पात मिश्रातु स्ट्रिप, नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों के लिए पात्र बनाने तथा पैक करने आदि के काम आते हैं। इस प्रक्रम से आवृत्त चादर की नमनीयता तथा अन्य यांत्रिक गुणों पर कोई फर्क नहीं पड़ता। अतः कई तरह के रूपण के बाद भी आवरण अटूट रहता है। इस आवरण के ऊपर इच्छानुसार रंग भी चढ़ाया जा सकता है।

इस्पात पर उष्मोपचार (हीट ट्रीटमेंट)

इस्पात परिचय भाग–1 में ताप–क्रिया की मूल प्रणाली का विशद वर्णन किया गया है तथा कार्बन मिश्रातु एवं अन्य किस्मों के इस्पात पर इसके प्रभाव को समझाया गया है।

इस प्रकार निर्मित इस्पात का आमाप, आकार एवं रासायनिक संघटन यथार्थ रखे जाने पर भी पदार्थगत एवं यांत्रिक गुण धर्मों में हो सकता है कि यह सभी उपयोगों

के लिए सौ फीसदी खरा न उतरता हो। इस्पात को ग्राहक की माँग के अनुरूप बनाने के लिए कई बार उष्मोपचार की जरूरत भी पड़ सकती है। इन ताप क्रियाओं का प्रधान लक्ष्य होता है इस्पात को इस लायक बनाना कि वह अंतिम व्यवहार के लिये उपयोगी हो। इसके लिए समुचित तापक्रिया चुनने के पहले इस्पात के रासायनिक संघटन, आकार, वजन इत्यादि पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए।

मुख्य ताप क्रियायें ये हैं :–

(i) अनीलन
(ii) नार्मलाइजिंग
(iii) कठोरण
(iv) टैम्परन
(v) कठोरण एवं टैम्परन

ज्यादातर इस्पात की तैयारी और आकार देने के बड़े चरण पूरे करने के बाद ही ऊष्मोपचार किए जाते हैं। आजकल इस्पात की सतह का मान बढ़ाने के साथ–साथ नई–नई प्रणालियों का विकास हो रहा है जिनकी मदद से रूपण के समय ही इस्पात की उपलब्ध ताप–मात्रा में ही शक्ति प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि अंत में किए जाने वाले ऊष्मोपचार की जरूरत ही नहीं रहती।

इस तरह के आधुनिक प्रक्रमों को प्रधानतः दो भागों में बाँटा जा सकता है, मसलन –

- ताप रासायनिक उपचार
- ताप यांत्रिक उपचार

ताप और रासायनिक क्रिया का युगल प्रयोग खासकर इस्पात के रासायनिक संघटन पर निर्भर करता है। इस प्रक्रिया में इस्पात गठन के प्रत्येक चरण (जैसे बेलन शुरू करने के ठीक पहले, अंतिम बेलन में घुसने से पहले, बेलन क्रिया समाप्त करके इस्पात ठंडा करते समय) में इस्पात के ताप को पूर्वनिर्दिष्ट मात्रा की सीमा में ही रखना होता है। तैयार माल क्रिस्टलों और रेणुओं की संरचना में भी मूल माल के यांत्रिक गुणों के अनुरूप होता है। इसके अलावा इस्पात के गणु जो उसकी सतह पर निर्भर करते है, सतह में रासायनिक परिवर्तन द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। इस बारे में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।

ताप तथा यांत्रिक युगल प्रणाली की व्यवस्था चित्र–37 में दिखाई गई है। इस प्रक्रिया में पहले से ही तय कर लिया जाता है किस ताप पर और किस प्रक्रिया द्वारा कितना विरूपण करना होगा। कभी कभी अतप्त बेलन अथवा तिरछे–तिरछे बेलनों का प्रयोग कर, घूर्णी मंच की सहायता भी ली जाती है। इस प्रकार इस्पात के धात्विक गुणों में कुछ परिवर्तन लाया जाता है। लंबाई में तथा चौड़ाई में इस्पात की पदार्थगत एवं यांत्रिक गुणता समान रखी जाती है।

इसके अलावा आजकल सतत ऊष्मोपचार (ऑटोमेटिक कंटीनुअस हीट ट्रीटमेंट) भी प्रारंभ किया गया है। गर्म अवस्था में इस्पात गठन करना इसका अभिन्न अंग समझा जाता है जिससे ऊर्जा की बर्बादी कम होती है। अतप्त बेलन के क्षेत्र में इस प्रक्रम को अलग रखा जाता है। क्योंकि यहाँ ऊर्जा की बर्बादी का सवाल ही पैदा नहीं होता। सतत प्रक्रम के संदर्भ में स्ट्रिप इस्पात के उष्मोपचार का उल्लेख किया जा सकता है। आजकल सतत वेलन के साथ सुनिर्दिष्ट तापक्रिया के प्रयोग का प्रचलन भी हुआ है।

प्रक्रम का समय चक्र कम हो जाता है।

- सतह उन्नत किस्म की और पूरी समतल होती है
- यांत्रिक गुणता चादर के हर भाग में समान होती है
- कुछ मिश्रातुओं में उन्नत यांत्रिक गुणता मिल जाती है।

विश्वप्रगति में इस्पात का योगदान

इस्पात का इतिहास खोजते खोजते हमने देखा था कि तीन हजार वर्षों से भी अधिक पहले से लोहा और इस्पात आदमी की जरूरतें पूरी करता रहा है और सामाजिक उन्नति में सहायता करता रहा है। तकनीकी उन्नति भी कई दिशाओं में हुई। भाप इंजन के आविष्कार के साथ–साथ उन्नति की रफ्तार तेज हो गई, फलतः औद्योगिक क्रांति हो गई। शिल्प और उद्योग का मूल आधार ही लोहा और इस्पात है। आज हम लोग अपने चारों तरफ पाते हैं– रेलवे, मोटरगाड़ी, हवाई जहाज, राकेट, कंम्यूटरं इत्यादि। कुछ भी संभव न होता अगर लोहा और इस्पात न होता। आजकल जो तरह–तरह के नए पदार्थ देखने को मिलते हैं, वे लोहे और इस्पात की बदौलत ही संभव हुए हैं। विभिन्न किस्मों के इस्पात तैयार हुए हैं। विभिन्न कामों के लिए और उसके साथ ही नये–नये प्रयोगों के लिए ऐसी नई–नई चीजों का आविष्कार हुआ है।

कई बार ऐसा लगता है कि इस्पात से प्रतिस्पर्धा की वजह से ही ऐसा संभव हुआ है। अतः यह ध्यान रखना होगा कि ये वस्तुयें जैसे कि प्लास्टिक, कंक्रीट, ऐलुमिनियम, सेरामिक इत्यादि का उत्पादन और प्रयोग संभव न होता अगर लोहा और इस्पात न होते।

नाना प्रकार और भिन्न–भिन्न प्रयोगों के लिए जो गुणधर्म जरूरी होते हैं वे अपेक्षतया सहज उपायों से इस्पात से मिल सकते है। नाना गुणों और आकारों में इस्पात तैयार होता है तथा उसका प्रयोग होता है जैसा मोटी तथा पतली चादर, ट्यूब, पाइप, कड़ा, चौरस, तार, तार–रस्सी इत्यादि। कहा जाये तो इस्पात, इंजीनियरी उद्योग का एक अपरिहार्य अंग है।

आज भी नित्य नये प्रयोजनों के लिए नये–नये किस्मों के इस्पात बनाए जाते हैं। इसका कारण है नाना उपक्रमों के प्रयोगों से इस्पात के मूलगुणों को इच्छानुसार बदलना। इस तरह प्रायः दो हजार से अधिक किस्म के इस्पात बाजार में है। तकनीकी अग्रगति तभी संभव है, जब काम का उपयोगी इस्पात मिले जैसे कि कृत्रिम रबर तैयार करने के लिए, प्लास्टिक बनाने के लिए, पेट्रोल तैयारी करने की यंत्रावली, अंतरिक्ष में रोकेट भेजने के लिए, नाभिक ऊर्जा उत्पादन के लिए, जेट इंजन इत्यादि तैयार करने के लिए। ये सब उन्नत तकनीक द्वारा सटीक इस्पात बनाने से ही संभव हो पाया है। 1970 के दशक में पेट्रोल संकट के समय किस प्रकार तेल कम से कम खर्च हो, इसके लिए नई तकनीक की तरफ लोगों का ध्यान गया। इन सबमें यातायात में काम आने वाले वाहनों में ईंधन की खपत कितनी कम की जाए, यही बहस का मुद्दा था। यहाँ से ही हल्के वाहन बनाने के युग की शुरुआत हुई। इसके साथ–साथ शुरू हुआ ऐसे यंत्रों–उपकरणों के उत्पादन का सिलसिला जिससे ईंधन की खपत कम होती हो। फलतः उत्पादन का खर्च कम हो और तैयार माल की कीमत भी कम हो। यह सब नये किस्म के हल्के परंतु मजबूत इस्पात बनने से संभव हुआ। पुरानी कारों की तुलना में आज की गाड़ियाँ 25 प्रतिशत कम बजनी हैं। कम वजन होने से पेट्रोल कम लगता है और वाहन के खर्चे में कमी आती है।

पेरिस का आईफल टॉवर बनाने में 7000 टन इस्पात लगा था। आज वही मात्र एक हजार टन में बन जाता। जानने की इच्छा होती है कि कोलकाता–स्थित हावड़ा

पुल बनाने में आज कितना इस्पात लगता? आजकल नए किस्मों के इस्पात इस्तेमाल करने की वजह से रेल लाइन की आयु 14 वर्ष से 40 वर्ष तक पहुँच गई है। रेल के सिरेवाला हिस्सा कठोरण के बाद काम में लाए तो आयु और बढ़ सकती है।

यहाँ से यह पता चलता है कि इस्पात एक ऐसी वस्तु है जिसे तकनीक के अनुसार बनाया जा सकता है – चाहे वह विद्युत् उत्पादन के क्षेत्र में उच्च ताप सहन करने के लिए हो अथवा तरल गैस रखने के लिए निम्न ताप –270 डिग्री सेल्सियस के लिए हो। इन सब तापों पर वस्तु को जंग विहीन रखना अथवा नाना रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग कर संक्षारण से बचा कर रखना, सबका समाधान इस्पात के पास है। इसी कारण इस्पात को प्रौद्योगिकी के विकास के लिए अपरिहार्य पदार्थ माना जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

एक अन्य दृष्टिकोण से इस्पात अत्यधिक वांछनीय वस्तु है। यह इसलिए कि यही धातु है जो वर्तमान में जैसी है वैसी ही रहेगी। उसे किसी रूप में जल, मिट्टी और वायु अशुद्ध अथवा कलुषित नहीं कर सकते। इसके अलावा जो रद्दी, इस्तेमाल के लायक नहीं रहा वैसा इस्पात पुनः गला कर काम में लाया जा सकता है। आज दुनिया का 50 प्रतिशत नया इस्पात इसी प्रकार तैयार किया जाता है। जंग लगने से इस्पात का काफी नुकसान होता है पर इस्पात खुद पुनः उस को दूषित नहीं करता। इस्पात स्वयं बहुत ही ईको–फ्रेंडली अथवा कहना चाहिए पर्यावरण–सुखद है जो आज के युग की विशेष माँग है।

★★★

अध्याय 5

परिशिष्ट

परिशिष्ट–1 वर्ष 2001 में भारतीय इस्पात संयंत्रों से तकनीकी आर्थिक उत्पादन

(i) लोह निर्माण

Plant	Carbon Rate (Kg/thm)	Energy Consum. (Geal/tcs)	BF Productivity (T/CuM/d)	Labour Prod. (T/man/yr)
भिलाई	455	7.07	1.64	137
दुर्गापुर	481	7.25	1.29	108
राउरकेला	510	9.34	0.95	67
बोकारो	478	7.96	1.53	116
इस्को	580	9.37	0.77	39
टिस्को	499	7.26	1.67	218
विशाखापत्तनम	455	6.83	1.82	222
जे.वी.एस.एल	537	6.93	-	548
इस्पात (Ispat)	508	4.04	0.99	812
एस्सार (Essar)	-	5.43	-	2064
अंतरराष्ट्रीय (ISP's)	**390-410**	**5.0 to 5.50**	**2.0 to 2.5**	**500 to 1500**

(ii) भारतीय एवं विदेशी इस्पात निर्माण की तुलना

	भारतीय औसत	अंतरराष्ट्रीय औसत
LD steel making		
Tap to tap time (mins)	100	48
Metallic yield (%)	87	90
Caster Production (M/min	0.8-1.4	1.2-2.5
Refractory Consumption (kg/tcs)	12	Less than 10
Energy in Hot strip		
Power (Kwht)	80	40
Fuel (Mcal/t)	500-600	250-300

परिशिष्ट–2

भारत एवं विदेशों में धमन भट्टियों की स्थिति

Sl. No.	Parameter	SAIL Plants (2001-02)				RINL (2002)	TISCO* "G" Furnance (2001)	Nagoya No.1 (Japan)* (1995)	Pohang No.4 (Korea)* (1995)	Rautaru ukki#1 (Finland)* (1999)
		BSP	BSL	DSP	RSP					
1.	Productivity. t/m3/d	1.45	1.39	1.13	0.96	1.59	1.93	2.19	2.22	2.87
2.	Fuel rate. kg./thm	561	591	597	650	525	558	481	505	428
3.	Coke rate. kg/thm	524	549	580	650	483	441	384	385	336
4.	Coke rate. kg/thm	23	28	17	-	42	28	NA	NA	NA
	(Nut Coke)									
5.	Coal injection. kg/thm	71 (BF-6)	57 (BF-4)	-	-	-	89	97	120 (Oil)	92
6.	H.B. temp. °C	965	977	927	762	1010	1143	1229	1106	1093
7.	Oxygen enrichment %	1-1.5% in selected furnances				-	5.17	1.8	2.3	4.6
8.	Sinter in burden. %	61.4	68.1	69.5	71.6	78.6	24.2	72.5	76.5	76.1
9.	Pellets-in burden. %		-	-	-	-	-	7.9	5.4	22.3
10.	Hot metal quality									
	% Si	0.67	0.59	0.95	0.97	0.41	0.70	0.21	0.39	0.42
	%	0.030	0.040	0.035	0.057	0.034	0.054	NA	NA	NA

परिशिष्ट–4

सहायक परिशोधन तकनीक, LF एवं VAD

Sl. No.	Parameter	SAIL Plants (2001-02)						Other Indian Plants (2001-02)			Plants Abroad (1998-99)		
		BSL	RSP		BSP		DSP	RINL	TISCO		British Steel (Ravens-craig)	Voest-Alpine	Daido Steel, Japan
		LF	LF	VAD	LF	VAD	VAD	LF	LF	VAD	VAD	LF	LF
1.	Transformer rating, MVA (Unit size, t)	40 (302)	24 (150)	8 (60)	28 (130)	15 (130)	15 (130)	25 (150)	20 (130)	33 (130)	15 (125)	22 (125)	NA
2.	Heating rate, C/min.	3	3	2-3	3-5	3	2-3	1.65	2-5	1.5-3	3	5	5
3.	Avg. treatment time, min.	40	40	90	30	65	100	30	40	120	80-120	20	60
4.	Power consumption, kwh/t	50	50	45	22	25	50	23	30	30	NA	20	30
5.	Electrode consumption, kg/t	0.3	0.25	0.4	NA	NA	NA	0.09-0.12	0.29	0.35	NA	0.1	0.3
6.	Desulphurisation, %	80	10	>85	75	65	60	85	90	60	>80	90	90
7.	Lowest 'S' achieved (%)	0.003	0.004	0.001	0.005	0.002	0.01	0.015	0.001	<0.01	0.001	0.001	0.001
8.	Ladle life (heats)	38	45	NA	40	40	NA	100	90	NA	NA	NA	NA

परिशिष्ट–3

भारत एवं विदेशो में Bof की स्थिति

Sl. No.	Parameter	INDIA							ABROAD (2000)				
		SAIL (2001-02)				TISCO (2000)	RINL-(2001-02)	Mexico AHMSA	UK Corus, Teesside	Turkey Erdemir	Japan NKK, Fukuyama	China Bao Steel	Austria VAI, Linz (1998)
		BSP	BSL	DSP	RSP								
1.	No. x Cap(t)	3x130	5x130 2x300	3x120	2x65 2x150	2x130 3x130	3x150	2x150	3x260	3x120	2x250	3x300	3x150
2.	Blow rate, Nm^3/min	350-400	300-325 800-1000	400-450	150-180 550-600	400-450	400-450		800-1000		500-800	800-900	500-550
3.	Blow time, min	18-19	25-28 18-20	15-16	20-22 16-18	18	18-20		20		13-17	14-15	15-16
4.	Tap-Tap. min	60	109	75	-	44	61		43	38	30-37	33	29-32
5.	Flux, kg/t	80	75	105	108		57	78	73				65
6.	O_2, Mn^3/t	60	59	62	60		57	51	56				58
7.	TMI, kg/t	1136	1162	1140	1174		1107	1106	1110		1040		1070
8.	Lining life	1500 1800	110-1250	2000	400-500 1000-1200		1049	3400	7600		8000	9000	1100-1200
9.	Hot Metal Si% Mn P S T°C	.6 .5-.8 .14-.2 .035 1300	.55 .04/.08 .18/.23 .035 1300	.75/.9 .7/.8 .18/.22 .050 1300	.8/.9 .4/.5 .15/.22 .055 1260	.7-.9 .07 .2-.25 .06-.08 1280	.15-.5 .04-.06 1250--1410	0.71 0.49 0.18 0.008	0.45 .30 0.08 0.023 1387		0.30 0.26 .14 0.030 1490	25-.80 0.60 0.09 .020 1420	0.40 0.80 0.06 0.035
10.	Technology installed	SM, SA, VAD, RH, LF	CB*, SA, LF	SM*, CB*, VAD*SA*	DS*, SM*,LF	DS,SM, CB,SA VAD, LF,RH	SM,SA, LF	DS, SM, CB,LF	DS,SM CB,SB, SA,LF, RH	DC,SM SB,CB SA, KTB-RH	CB,LF, SB,SM, SA,KTB-RH	DS, SM, CB, CAS-OB, KIP-RH	DS,SM CB,SB, SA,LF,RH

DS : Hot metal desulphurisation
SM : Static Model
SB : Sublance
SA : Slag arrestor
CB : Combined blowing
LF : Ladle furnace
*Technology not in regular use

परिशिष्ट–5

सतत् संचकन प्रणाली की भारत एवं विदेशों में स्थिति

Sl. No.	Parameter	SAIL Plants (2001-02				Other Plants (2001-02)		VAI	Hoog-ovens	China Steel	NKK
		DSP	BSP	BSL	RSP	RINL	TISCO	(1998)	(1998)	(1998)	(1996)
A.	Casting Speed (m/min.)										
	Slab	-	0.55-1.2	1.0-1.90	1.10		1.3	0.7-.20		0.5-08.	0-1.6
	Boom		0.5-0.80			0.82		0.514			
	Billet	3.25					3.04-4.0	1.6-2.5	2.73-3.45		
B.	Sequence Length (hearts/tundish)										
	Slab		5-6	7-8	3-5			7-8			>15
	Bloom		6-7	4-5	7-8						
	Billet	4.1					3.0-5.0	5.0			
C.	Prime Yield (%)										
	Slab		96.5	96.8	98.0			98.0			97.99
	Bloom	-	97.5-98.0			94.0		97.5			
	Billet	97.5					96.0	97.5			
D.	Mould life (heats)										
	Slab		100	200-250	18-200			400			
	Block		300			164		1000		1166	
	Billet	200-250									

परिशिष्ट–6

भारत एवं विदेशों में बेलन मिलों की स्थिति

Sl. No.	PARAMETER	Sail Plants (2001-02)				TISCO	ABROAD
		BSP	SSL	DSP	RSP	(1996-97)	(1999)
A.	Hot Strip Mill						
	1. Rolling rate.t/hr		552		238	204	
	2. Yield %		962		97.0		98.5 (NKK), IISI
	3. Mill utilisation,						
	% (available hours)		70.7		70.0	58.0*	80-85 (IISI)
	4. Heat consumption,						
	MCal/t		474		368	398	250-350 (IISI)
	5. Crown. um		20-30		50-80	20-30	
B.	Plate Mill		CLOSED				
	1. Rolling rate, t/hr	162	65				
	2. Yield, %	87.3 Rolled Plate	91.5		92.0 Rolled Plate		
		80.0 APO			90.5 APO		
	3. Heat consumption, MCat/t	640			414	200-250 (IISI)	
C.	Tandem Cold Rolling Mill	-	-		NA		
	1. Rolling rate, t/hr		TM I 115		CRI 28		
			TM II 84		TM 55		
	2. Utilisation, % (available hours)		TM I 66		Cri 65	90.0 (IISI)	
			TM II 44				
	3. Yield, % (HR to CR)		92.0		88.09	95.0 (NKK)	
	4. Power Consumption, Kwh/t		162		210		
	5. Heat Consumption, MCal/t		416 (Total)		NA		
D.	Coated Products						
	1. Capacity Tones per annuam (TPA)		189000		80,001 (each line)	3,00,000t (CGL2)	5,40,000t (salzgitter/Germany)
	Tones per month (TPM)		15800		6600	25000	45000t
	2. Process speed (m/min)		130-150		90 Max	150	
	3. Coating mass (gm/m2)		+4% Max		+5% Max	+1-2% Max	+1.5%
	4. Zinc Consumption		3.3-3.8			2.0	2.0
	5. Drossx Control (kg/t)		3.3-3.8			2.0	2.0

TMI - Tandem Mill-1, BSL
CRI - Reversing Mill-1, RSP
TM - Tandem Mill, RSP
Yield - APO (As per order
TM 2 - Tandem Mill - 2 BSL

अध्याय 6

पारिभाषिक शब्द सूची
लोहा व इस्पात उत्पादन

agglomeration	संपिंडन
allotropy	अपररूपता
analysis	विश्लेषण
atomic iron	परमाण्विक लोह
automation process	स्वचालित प्रक्रम
auxilliary	सहायक
axis	अक्ष
bed	संस्तर
blast furnace	धमन भट्टी
brittle	भंगुर
burden	धान भार / बोझाई
case carburizing	पृष्ठ कार्बुरण
case hardening	पृष्ठ कठोरण
casting	संचकन / ढलाई

cast iron	संचकित लोहा / ढलवा लोहा
chemical analysis	रासायनिक विश्लेषण
chemical composition	रासायनिक संघटन
chemical element	रासायनिक तत्व
chemical properties	रासायनिक गुणधर्म
chemical reaction	रासायनिक अभिक्रिया
cladding	अधिपट्टन
classification	वर्गीकरण
cluster mill	गुच्छ मिल
coil	कुंडली
coiling	कुंडलन
coking coal	कोककारी कोयला
combustion	दहन
converter	परिवर्तक / कन्वर्टर
cold drawing	अतप्त कर्षण
cold rolling	अतप्त बेल्लन
cold working	अतप्त कर्मण
column	स्तंभ
compound	यौगिक
consumption	खपत
continuous casting	सतत संचकन
continuous casting process	सतत संचकन प्रक्रम
conveyor belt	वाहक बेल्ट / वाहक पट्टा
corrosion	संक्षारण

critical temperature	क्रांतिक ताप
cross rolling	ऊर्ध्व बेल्लन
crystal	क्रिस्टल
cyclone	चक्रवात
decomposition	अपघटन
degassification	विगैसन
deoxidation	विऑक्सीकरण
desuphurisation	विगंधकन
diffusion	विसरण
distortion	विरूपण
dominant	प्रमुख / प्रधान
dry cooling	शुष्क शीतलन
dust collector	धूलि संग्राहक
elasticity	प्रत्यास्थता
electric arc furnace	विद्युत् आर्क भट्टी
electromagnetic stirring	वैद्युतचुंबकीय विलोडन
element	तत्व
eletron beam melting	इलेक्ट्रॉन किरणपुंज गलन
electrostatic precipitator	स्थिरवैद्युत् अवक्षेपित्र
extrusion	उत्सारण
finished goods	तैयार माल
finished product	परिसज्जित उत्पाद
fire clay	अग्निमृत्तिका
flexible	नम्य / लचीला

fludised bed	तरलित संस्तर
fludised bed furnace	तरलित संस्तर भट्टी
flux	गालक
foundry	ढलाईशाला / संचकनी
fuel injection	ईंधन अंतक्षेपण
furnace	भट्टी / भाष्ट्र
fusion bond	संगलन आबंध
gangue	गैंग
grain	रेणु
grain refinement	रेणु परिष्करण
heat	ऊष्मा
heat treatment	ऊष्मोपचार
high carbon steel	उच्च कार्बन इस्पात
high cutting steel	उच्च कर्तन इस्पात
high speed steel	उच्च चाल इस्पात
homogeneous	समांग
horizontal rolling	क्षैतिज बेल्लन
hot dip coating	तप्त निमज्जी विलेपन
hot rolling	तप्त बेल्लन
hot top	तप्त शीर्ष
humidity	आर्द्रता
impurity	अपद्रव्य
inclusion	अंतर्वेश
induction furnace	प्रेरण भट्टी

infrastructure	आधार संरचना
ingot	पिंड
iron ore	लोह अयस्क
killed steel	हत इस्पात
ladle	लैडल
laminated	पटलित
lattice	जालक
layer by layer	परत दर परत
liquid	द्रव
magnetic	चुंबकीय
mechanics	यांत्रिकी
metallic	धात्विक
metallurgist	धातुविद्
metallurgy	धातुकर्मिकी, धातुकर्म–
metal working	धातुकर्मण
metamorphic form	कायांतरित रूप
metastable	मित स्थायी
mild steel	मृदु इस्पात
mineral	खनिज
mini blast furnace	लघु धमन भट्टी
miscible	मिश्रणीय
moisture	नमी
molten metal	गलित धातु
non metallic	अधात्विक

open die forging	विवृत रूपदा फोर्जन
open hearth furnace	ओपन हार्थ भट्टी
open hearth process	ओपन हार्थ प्रक्रम
operation	संक्रिया / प्रचालन
ore	अयस्क
pellet	गुटिका
pelletisation	गुटिकायन
permeability	पारगम्यता
physical properties	भौतिक गुणधर्म
pickling	अम्लोपचार
press	दाबित्र
press forging	दाब फोर्जन
process	प्रक्रम
purification	शोधन
qualitative	गुणात्मक
quality	गुणता
quantitative	मात्रात्मक
recrystallisation	पुनः क्रिस्टलन
reducing agent	अपचायक
reduction	अपचयन
refining	परिष्करण
refractory brick	उच्चतापसह इष्टिका
refractory material	उच्चतापसह सामग्री
regeneration	पुनर्जनन

reverbatory furnace	परावर्तनी भट्टी
reversible process	उत्क्रमणीय प्रक्रम
roll	बेलन
rolling	बेल्लन
rolling mill	बेल्लन मिल
rotatory sieve	घूर्णी चालनी
saturated	संतृप्त
scrap	रद्दी / स्क्रैप
seamless pipe	सीवनहीन पाइप
segregation	संपृथकन
sequence casting	आनुक्रमिक संचकन
self fluxing	स्वगालकन
semikilled steel	अर्धहत इस्पात
shaping	रूपण / आकार देना
shrinkage cavity	संकुचन कोटर
sieve	चालनी
size	आमाप
sizing	1. आमापन 2. चिक्कणन
skew rolling	तिर्यक बेल्लन
slag	धातुमल
smelting reduction process	प्रगलन अपचयन प्रक्रम
soaking pit	समतापन गर्त
solidification	पिंडन
solvent	विलायक

spiral shaped	सर्पिलाकार
spurting	उत्क्षेपण
steel	इस्पात
steel alloy	इस्पात मिश्रातु
steel ingot	इस्पात पिंड
stirring	विलोपन
strain	विकृति
suspension effect	निलंबन प्रभाव
technology	प्रौद्योगिकी
tempering	टैम्परन / पायन
temperature	ताप
tensile strength	तनन सामर्थ्य
torque	बलाघूर्ण
toughness	चर्मलता
tundish	टंडिश
tuyere	ट्बीयर
vaccum	निर्वात
vaccum purification	निर्वात शोधन
wrought iron	पिटवा लोहा
wear resistance	घिसाई प्रतिरोध
work hardening	कर्म कठोरण

★★★

© Govt. of India
Controller of Publication
PED.947
1000-2013 (DSK-II)

Price : Inland : ₹ 187.00
Foreign : £ 1.83 or $ 3.00

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

मुद्रण निदेशालय द्वारा, भारत सरकार मुद्रणालय, एन.आई.टी. फरीदाबाद में मुद्रित, 2013
PRINTED BY DIRECTORATE OF PRINTING AT GOVERNMENT OF INDIA PRESS, N.I.T. FARIDABAD, 2013
www.dop.nic.in